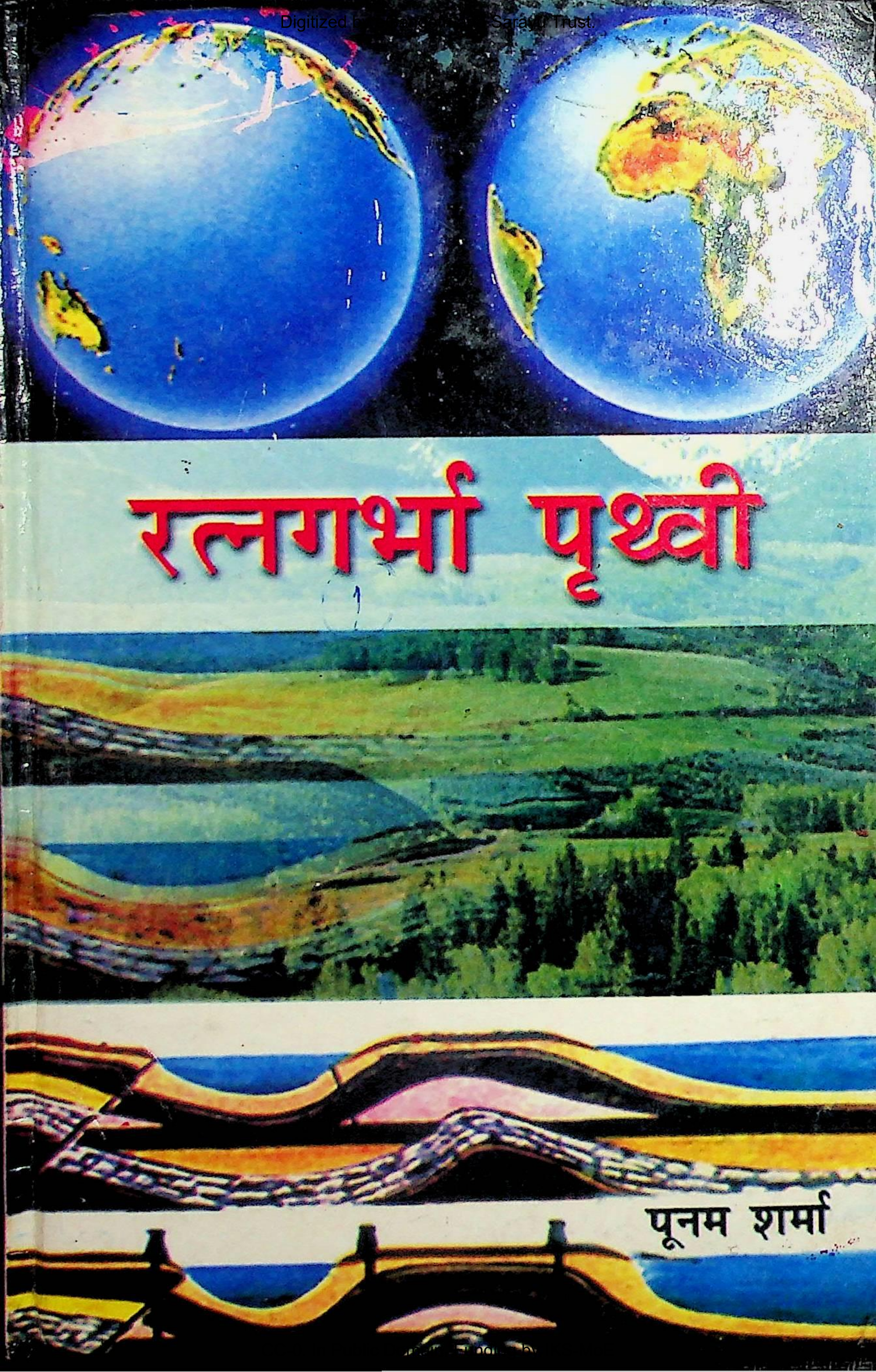


रत्नगर्भा पृथ्वी

पूनम शर्मा

रत्नगर्भा पृथ्वी

पूनम शर्मा

हिमालय प्रकाशन

Himalya prakashan, Delhi

ISBN 978-81-904195-2-9

प्रकाशक
हिमालय प्रकाशन
ए-76/4, गली नं.-12
ईस्ट आजाद नगर
दिल्ली-110051
प्रथम संस्करण
2011
अक्षर संयोजक
संजय लेजर प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
मुद्रक
आर. के. आफसैट
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

मूल्य : 150.00

RATNGARBHA PRITHVI ***by*** **Poonam Sharma**

मंतव्य

जिस धरती पर हमारा जन्म हुआ है, वह सदा से ऐसी नहीं थी। आज हमारे चारों ओर खेत, वन, पर्वतमालाएं दिखाई पड़ रही हैं। नदियां, सरोवर और महासागर हैं। भांति-भांति के पशु-पक्षी और जीवधारी धरती पर मुक्त विचरण करते हैं। पानी के अंदर भी जीवधारियों की एक जीती-जागती दुनिया समाई हुई है। पर ज़ीवन के इन नाना रूपों के विकास में करोड़ों वर्ष लगे हैं। धरती पर जीवन के विकास की एक लंबी कहानी है। धरती पर जीवन कैसे आया, सर्वप्रथम जीव का उद्‌भव कैसे हुआ? इस बारे में हम ठीक से कुछ भी नहीं कह सकते।

ऐसा अनुमान है कि पृथ्वी का निर्माण आज से चार-पांच सौ करोड़ वर्ष पूर्व हुआ। तब धरती का ताप बहुत अधिक था। धरती आग और गैसों का गोला थी। घूमती हुई धरती के गैसीय पिंड में लोहा, निकिल जैसे भारी परमाणु गुरुत्वाकर्षण के कारण बीच में एकत्र हो गए। यह धरती का आंतरिक भाग बना। इसके हल्के तत्व जैसे एल्युमीनियम, सिलिकन, फास्फोरस, सल्फर आदि उसके चारों ओर एकत्र हो गए और इनसे धरती के मध्य भाग का निर्माण हुआ। सबसे हल्के तत्वों—हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन आदि ने पृथ्वी के बाह्य भाग अर्थात् वातावरण का निर्माण किया। ये चारों गैसें आज भी पृथ्वी के वातावरण में उपस्थित हैं।

धीरे-धीरे कई लाख वर्षों में पृथ्वी ठंडी होती गई और मुक्त परमाणुओं ने आपस में संयोग करके अणुओं का निर्माण किया। हाइड्रोजन और आक्सीजन के संयोग से पानी बना। ज्यों-ज्यों धरती और ठंडी होती गई, वातावरण भी ठंडा होकर जमने लगा, वर्षा होने लगी। धीरे-धीरे जल धरती के चारों ओर समुद्र के रूप में एकत्र होने लगा। इनमें बहुत से खनिज और कार्बनिक यौगिक घुल-मिल गये और आदि समुद्र एक शोरबा जैसा बन गया। इन्हीं सागरों की गोद में जीवन पनपा और वहीं से विस्तार पाता गया।

पहले सरल-साधारण जीव बने, फिर जीवन का रूप जटिल से जटिलतर होता गया। कुछ जीवधारी पानी से रेंगकर धरती पर आये। कुछ पानी में ही रहने के अभ्यस्त हो गए। कालक्रम में हवा में उड़ने वाले पंछी भी विकसित हुए। जैव विकास की अंतिम सीढ़ी में धरती पर मानव आया और अपनी बुद्धि और विवेक से धरा का स्वामी बन

बैठा। आज धरती पर जीवधारियों की जितनी भी प्रजातियां पायी जाती हैं, मानव उनमें सबसे बुद्धिमान प्राणी है।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि आज धरती पर लगभग 10 लाख जंतुओं और 3 लाख वनस्पतियों की जातियां-प्रजातियां पायी जाती हैं। जीवधारियों की संख्या इससे भी अधिक हो सकती है जिनकी पहचान की जानी हैं। काल के प्रवाह में बहुत सी जैव प्रजातियां लुप्त भी हो चुकी हैं। बहुत से जीव-जंतु पृथ्वी के गर्भ में दब गए। उनके दबे-पड़े अवशेषों को जीवाश्म (फॉसिल) कहते हैं। खुदाई में मिले इन्हीं जीवाश्मों के द्वारा हम यह जान सके हैं कि किसी प्रकार जंतुओं के पूर्वज रहते थे और उनमें किस प्रकार विविधता आयी।

जीवन का विकास एक धीमी क्रियाा है। धरती पर जंतुओं एवं वनस्पतियों के विकास में अरबों वर्ष लगे हैं। इनका इतिहास धरती के गर्भ में समाया हुआ है। समय-समय पर मिले जीवाश्मों द्वारा हमें इनका ज्ञान होता रहता है। जीबन का विकास कई चरणों में हुआ। अतः हम धरती पर जीवन के विकास को कई युगों में बांटते हैं। जीवों का विकास निम्न महाकल्पों (Era) में हुआ है।

1. आद्यकल्पी महाकल्प (Archaeozoic Era)
2. प्राजीवी महाकल्प (Proterozoic Era)
3. पुराजीवी महाकल्प (Paleozoil Era)
4. मध्यजीवी महाकल्प (Mesozoic Era)
5. नूतनजीवी महाकल्प (Cenozoic Era)

आद्यकल्पी महाकल्प का आरंभ भू-पटल बन जाने के बाद, आज से लगभग 3 अरब 50 करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था। इसकी अवधि प्रायः 1 अरब वर्ष थी। यद्यपि जीवों के स्पष्ट जीवाश्म तो नहीं मिले हैं फिर भी वैज्ञानिकों का विश्वास हे कि इस महाकल्प के प्रारंभ में ही 'जीवन की उत्पत्ति' (Origin of Life) हो चुकी थी।

आज से प्रायः 2 अरब 50 करोड़ वर्ष पूर्व प्राजीवी महाकल्प का आरंभ हो चुका था। महाकल्प के आरंभ में जीवाणुओं (Bacteria) और नीला हरित शैवालों (Blue green algae) का बाहुल्य था। बाद में हरे शैवालों (Green algae) और कवकों (Fungi) का पर्याप्त विकास हुआ। इस महाकल्प के आदि सागर में कुछ रीढ़ विहीन जंतुओं (Non-chordates) का विकास हुआ।

आज से प्रायः 57 करोड़ वर्ष पूर्व पुराजीवी महाकल्प का आरंभ हुआ। इस महाकल्प में जंतुओं और वनस्पतियों का सागर से धरती पर पर्दापण हुआ। धरती पर जिम्नोस्पर्म टेरिडोफाइट्स पादपों के घने जंगल छा गये और रीढ़ वाले जंतु अस्तित्व में आये।

मध्य जीवी कल्प आज से प्रायः 23 करोड़ वर्ष पूर्व आरंभ हुआ। इसकी अवधि 16 करोड़ 50 लाख वर्ष थी। इसे 'सरीसृपों का युग' (Age of Reptiles) भी कहते हैं। इस काल में रेंगकर चलने वाले जीवों (सरीसृप) का विकास अपनी चरम सीमा पर था। इस कल्प में जलीय, थलीय और वायुवीय जातियां उत्पन्न हुईं। इसी काल में डाइनोसॉर

जैसे अनोखे प्राणी धरती पर आये और उनका चरम विकास हुआ। धरती पर डाइनोसारों का अवतरण हुआ कि वे बढ़ते-पनपते गये और प्रकृति उन पर कुछ इस कदर मेहरबान थी कि वे धरती के सबसे शक्तिशाली प्राणी बन बैठे। इनमें से कुछ इतने भारी भरकम थे कि देखने में डरावने लगते थे। इन अद्भुत प्राणियों ने धरती पर प्रायः 12 करोड़ वर्षों तक एकदम राज्य किया। लेकिन अचानक कुछ ऐसा हुआ कि ये दैत्याकार जंतु बदलती दुनिया की दौड़ में पिछड़ गए और सदा-सदा के लिए काल के गाल में विलीन हो गए।

तृतीयक कल्प की अवधि लगभग 6 करोड़ 32 लाख वर्ष की है। इसे 5 युगों—वेक्तियोसीन, इओसीन, ओलिगोसीन, मायोसीन, प्लियोसीन में विभाजित किया जाता है। प्लियोसीन युग के अंत में मानव जैसे कपियों से प्रथम आदि मानव की उत्पत्ति हुई। आधुनिक घोड़े जैसे प्लियोहिप्पस की उत्पत्ति हुई।

चतुर्थक कल्प आज से प्रायः 18 लाख वर्ष पूर्व आरंभ हुआ। इसे प्लिस्टोसीन और आधुनिक युग या होलोसीन युग (Holocene epoch) में विभाजित किया जाता है। प्लिस्टोसीन युग में छोटे, कोमल, शाकीय पादपों का विकास जारी रहा। मानव समुदाय में सभ्यता एवं सामाजिकता की स्थापना हुई।

आधुनिक युग (Recent or Holocene epoch) आज से प्रायः 40,000 वर्ष पूर्व आरंभ हुआ। इस काल में जंतुओं में सर्वोच्च सत्ता मानव ने अर्जित की है। इस युग को मानव युग (Age of man) की संज्ञा दी गई है।

यह है धरती पर जीवन की कहानी। धरती हमारा भरण-पोषण करती है। अपने गर्भ के अंदर नाना रत्नों, खनिजों का भंडार छुपाये बैठी है। रत्नगर्भा वसुंधरा के बारे में नाना तथ्यों का उद्घाटन करने वाली यह कृति पाठकों को अवश्य रुचिकर होगी, ऐसी आशा है।

34, एलनगंज
इलाहाबाद-211002

शुकदेव प्रसाद
निदेशक
विज्ञान वैचारिकी अकादमी

क्रम

1

पृथ्वी : मानव की जन्मस्थली

आप और हम सभी पृथ्वी पर जन्मे हैं। यह हमें एक बड़ा भूभाग उपलब्ध कराती है जिसमें हम जो चाहते हैं कर सकते हैं। यह हमें शरीर पर धारण करने के लिए वस्त्र और जीवन के लिए आवश्यक भोजन देती है। इसके गर्भ में अनेक प्रकार के संसाधन—खनिज पदार्थ, तेल, कोयला आदि का असीमित भंडार है। जिसके द्वारा हम मशीनें बनाते हैं और जमीन को उपजाऊ बनाते हैं। यह धरती ही मानव को अस्तित्व देती है।

1. पृथ्वी चपटी है और गुम्बदाकार स्वर्ग से ढकी है

पृथ्वी गोल है। लेकिन पुराने समय में लोग इस तथ्य से परिचित नहीं थे क्योंकि उस समय उनके प्रारंभिक ज्ञान साधन पृथ्वी का सर्वेक्षण कर पाने की क्षमता की दृष्टि से पर्याप्त नहीं थे। उन्होंने पृथ्वी को केवल उतना ही समझा जितनी वह उन्हें दिखाई पड़ी। उनकी दृष्टि में पृथ्वी एक समतल भूमि थी जो स्वर्ग से ढकी हुई थी। यह स्वर्ग एक गुम्बद की तरह पृथ्वी के ऊपर छाया हुआ था। उनके विचार में पृथ्वी चपटे आकार की थी और इसके ऊपर गुम्बद के आकार का आकाश था और आकाश दूर क्षितिज में समुद्र से जिस स्थल पर मिलता था, वही पृथ्वी का अंतिम छोर था जहां कभी कोई जा नहीं सकता था।

लगभग 2000 वर्ष पहले ही लोगों ने यह अनुभव किया कि पृथ्वी चपटी नहीं बल्कि गोलाकार भूमि है।

यदि आप समुद्री जहाज को दूर से आते देखें तो पहले आपको जहाज का मस्तूल दिखाई पड़ेगा तला बाद में और फिर अन्त में पूरा जहाज साफ दिखलाई पड़ेगा। अगर पृथ्वी चपटी होती तो यह स्थिति बिलकुल भिन्न होती और तब आपको दूर जाता जहाज छोटा और छोटा दिखाई पड़ता।



चित्र-1 : समुद्र में पास आता हुआ जहाज

लगभग 400 वर्ष पूर्व जब यूरोप में पूंजीवादी जागृति की लहर उठी, उस समय नई जहाज पंक्तियों के बढ़ावे का काफी जोर बढ़ा। सर्वप्रथम स्पेन के राजा द्वारा सितम्बर 1519 में मैग्लन को पृथ्वी की परिक्रमा के मुहिम पर भेजा गया। मैग्लन के नेतृत्व में तब स्पेन से लगभग 200 से भी अधिक लोगों का दल पांच जहाजों में रवाना हुआ। उन्होंने अटलांटिक महासागर के पश्चिमी छोर को पार करते हुए दक्षिणी अफ्रीका तक का चक्र पूरा किया। वे अज्ञात भू प्रदेश की खोज करना चाहते थे। इस यात्रा में उन्हें असहनीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। गन्दा पानी पिया और लकड़ी की छीलन तक को खाकर पेट भरा। मार्च 1521 में ये फिलीपीन्स पहुंचे। यहां मैग्लन को वहां के लोगों ने बड़ी निर्ममता से मार डाला। मैग्लन के कुछ लोग इस संघर्ष में बच गए। उन्होंने अपना अभियान जारी रखा और जीवन के कठोर अनुभवों से गुजरते हुए वे हिन्द महासागर और केप कैनरेवल होते हुए उसी स्थान पर लौट आए जहां से यात्रा आरम्भ की थी। पर उस समय केवल एक जहाज और अठारह आदमी ही बचकर लौट पाए थे।

मानव इतिहास में यह पहला अवसर था जब लोगों ने पृथ्वी की परिक्रमा में सफलता प्राप्त की थी। इससे लोगों को इस बात का विश्वास हो गया कि पृथ्वी गोल है। उसके बाद तो जल, थल और वायु मार्ग के द्वारा पृथ्वी के हर कोने को छानने के बाद यही निश्चय हुआ कि पृथ्वी गोल है।

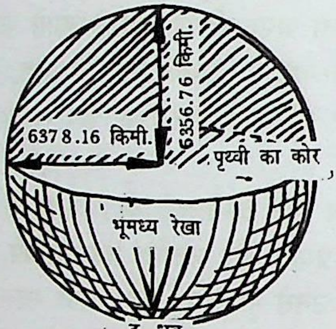
आज विज्ञान और टेक्नोलाजी के विकास के कारण मनुष्य के बनाए उपग्रहों के सफल प्रयोग और अंतरिक्ष तक उसकी पहुंच के आधार पर जो चित्र प्राप्त हुए हैं उनसे पृथ्वी का एक स्पष्ट स्वरूप सामने आया है और चित्रों से पृथ्वी के बारे में पर्याप्त प्रामाणिक जानकारी प्राप्त हुई है।



चित्र-2 : उपग्रह की सहायता से लिया गया पृथ्वी का चित्र

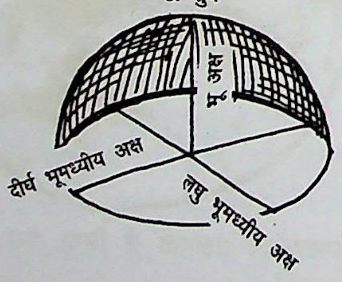
2. पृथ्वी का आकार

पृथ्वी गोलाकार है यह विचार सामान्य रूप से स्वीकार किए जाने के बाद अब लोगों ने पृथ्वी के आकार को गेंदनुमा, दीर्घवृत्ताकार, सन्तरेनुमा या नाशपती के आकार का कहना प्रारम्भ कर दिया। परिमाप और आकलन के आधार पर यह भी स्पष्ट हो गया कि पृथ्वी दीर्घवृत्ताकार है और इसका लघुतर अर्द्धव्यास, पृथ्वी के केन्द्र में उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव के बीच की दूरी के रूप में 6356.78 कि.मी. है और महत्तर अर्द्धव्यास, भूमध्य रेखीय अर्द्धव्यास 6378.16 कि. मी. है। (चित्र-3)



चित्र-3 : पृथ्वी के भूमध्य रेखीय एवं ध्रुवीय अर्द्धव्यास

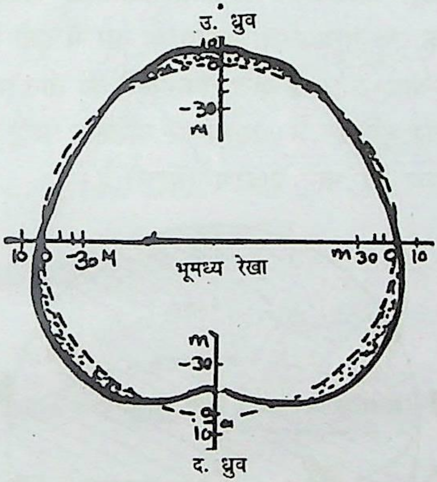
हालांकि भूमध्य रेखा स्वयं में पूर्ण वृत्ताकर नहीं है। इसमें भूमध्य रेखा के लघुतर अर्द्धव्यास और वृहत्तर अर्द्धव्यास में अन्तर 212 मी. का है। और ऐसा दीर्घवृत्त जिसके दीर्घ और लघु भूमध्यीय अर्द्धव्यासों और ध्रुवीय अर्द्धव्यास में परस्पर अन्तर हो त्रि-ध्रुवीय दीर्घवृत्त कहलाएगा। (चित्र-4)



चित्र-4 : तीन कोणीय दीर्घवृत्त

मानवकृत उपग्रहों से प्राप्त प्रामाणिक आंकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्ध पृथ्वी के भूमध्यीय तल द्वारा विभक्त होते हैं पर यह सम विभाजन नहीं है। उत्तरी गोलार्द्ध पतला और लम्बा होता है जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध चौड़ा और छोटा होता है। समुद्री तल को प्रामाणिक तल मानकर मापने पर उत्तरी ध्रुवीय अर्द्धव्यास ध्रुवीय अर्द्धव्यास से 40 मी. लम्बा होता है। अतः कहा जा सकता है कि पृथ्वी

अनियमित दीर्घवृत्ताकार है। (चित्र-5) यह एक गेंद की तरह दिखाई देती है लेकिन वास्तव में यह 1/300 भाग सपाटता के साथ एक अनियमित दीर्घवृत्ताकार है। कल्पना कीजिए कि पृथ्वी एक ऐसा वालीबाल है जिसे आपने हाथ से थोड़ा दबाया हुआ है।



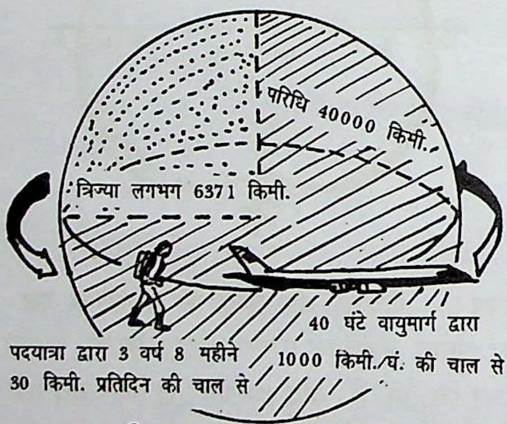
चित्र-5 : दीर्घवृत्त और पृथ्वी का प्रामाणिक तल

पृथ्वी का औसत अर्द्धव्यास लगभग 6371 कि.मी. है और अधिकतम परिधि 40 हजार कि. मी. है। यदि हम यह दूरी पैदल तय करें और हमारी गति 30 कि. मी. प्रति दिन रहे तो पृथ्वी का एक चक्र हम 3 वर्ष 8 माह में पूरा कर पाएंगे। हवाई जहाज से 1000 कि.मी. प्रति घण्टे की रफ्तार से यह दूरी 40 घण्टे में तय हो जाएगी। पृथ्वी का मापा गया क्षेत्रफल 5.1×10^8 कि. मी^{2} है। पृथ्वी का आयतन 1080 करोड़ कि.मी^{3} है और भार 5.98×10^{21} टन है। कितनी विशाल है यह ? हालांकि असीमित ब्रह्माण्ड के सामने यह समुद्र में एक बूंद के समान है। (चित्र-6)

3. पृथ्वी की आंतरिक संरचना

पृथ्वी का भीतरी प्रदेश देखने में कैसा लगता होगा? वर्तमान में इस बारे में एकदम कुछ कह पाना असम्भव है। पृथ्वी की ऊपरी सतह की

बहुत बारीक पर्त को भेद कर अभी तक 10000 मीटर गहराई तक ही पहुंचा जा सका है जो कि पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के बारे में पूरी सूचना देने के लिए पर्याप्त नहीं है। ज्वालामुखी के विस्फोटों और स्वाभाविक तथा कृत्रिम भूकंपों की हलचल से प्राप्त पदार्थों के अध्ययन से वैज्ञानिक पृथ्वी की भौतिक एवं रासायनिक प्रकृति के बारे में इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि पृथ्वी की बाह्य सतह से केन्द्र तक पृथ्वी की तीन पर्तें हैं इनमें बाहरी परत ही पृथ्वी का भूमितल है। आभ्यन्तर या क्रोड पृथ्वी का हृदय है और इन दोनों के मध्य का भाग प्रावरण (मैंटल) है।

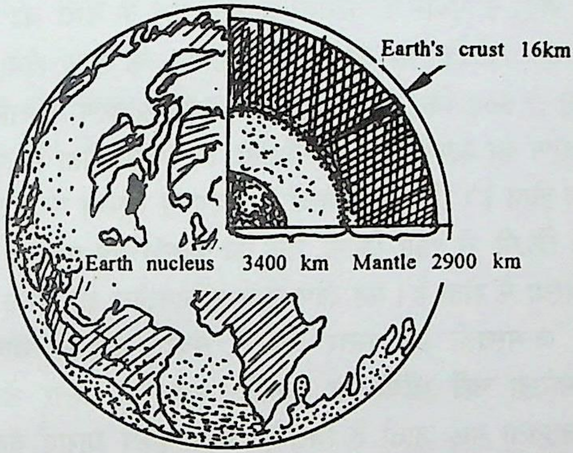


चित्र-6 : पृथ्वी का आकार

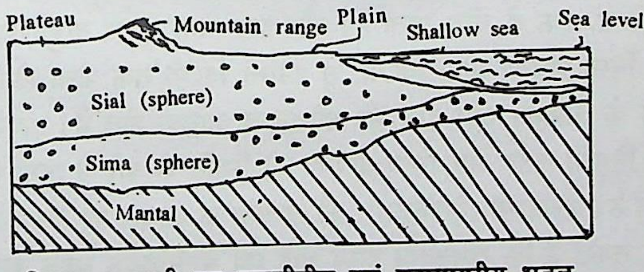
इन तीनों परतों की प्रकृति और संरचना परस्पर भिन्न है। सामान्यतया जितना गहरे जाएंगे, उतना ही घनत्व बढ़ता जाता है। उसी अनुपात में तापक्रम और दाब ऊंचा होता जाता है।

भूतल पृथ्वी की कठोर त्वचा के समान है जो औसतन नीचे 16 किमी. गहराई तक है। यह अपनी प्रकृति और रासायनिक संरचना में भिन्न-भिन्न प्रकार की चट्टानों से निर्मित है। भूतल की मोटाई स्थान-दर-स्थान बड़े विचित्र तरीके से भिन्नता दर्शाती है। महासागरीय भूतल काफी पतला होता है जो कुछ भागों में लगभग 5 से 8 कि.मी. मोटा होता है। पहाड़ों और पठारों के नीचे का भूतल अधिक से अधिक 80 कि.मी. तक मोटा होता है। समतल

और उथले समुद्र के नीचे का भूतल लगभग मध्य की मोटाई का होता है जैसा कि चित्र-8 में दर्शाया गया है।



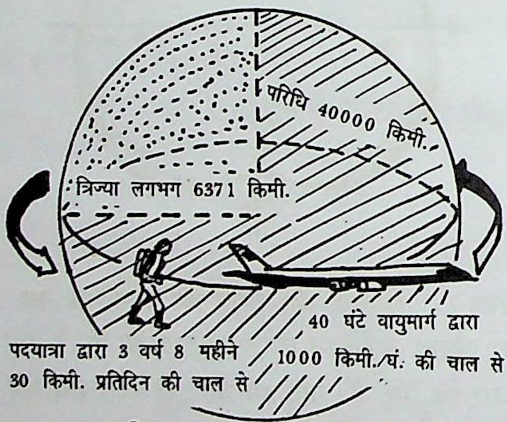
चित्र-7 : पृथ्वी की आन्तरिक संरचना



चित्र-8 : पृथ्वी का महाद्वीपीय एवं महासागरीय भूतल

महासागरीय भूतल मुख्यतया असिताश्म (बैसाल्ट) का बना होता है जिसमें सिलिका, मैग्नीशियम तथा लौह की मात्रा अधिक होती है। भूतल की यह परत साइमा के नाम से पुकारी जाती है। महाद्वीपीय भूतल (जिसमें महाद्वीप का सीमावर्ती भाग भी शामिल है) में दो परतें होती हैं—ऊपरी परत सिअल कहलाती है। यह मुख्य रूप से ग्रेनाइट से बनी होती है। इसमें सिलिका एवं एल्यूमीनियम की अधिकता होती है तथा यह निचली सतह साइमा से हल्की होती है, जो अक्सर पतली होती है। इन दोनों के मध्य में एक अनियमित सीमा होती है जिसे कोनराड असततता कहा जाता है।

बहुत बारीक पर्त को भेद कर अभी तक 10000 मीटर गहराई तक ही पहुंचा जा सका है जो कि पृथ्वी की आन्तरिक संरचना के बारे में पूरी सूचना देने के लिए पर्याप्त नहीं है। ज्वालामुखी के विस्फोटों और स्वाभाविक तथा कृत्रिम भूकंपों की हलचल से प्राप्त पदार्थों के अध्ययन से वैज्ञानिक पृथ्वी की भौतिक एवं रासायनिक प्रकृति के बारे में इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि पृथ्वी की बाह्य सतह से केन्द्र तक पृथ्वी की तीन पर्तें हैं इनमें बाहरी परत ही पृथ्वी का भूमितल है। आभ्यन्तर या क्रोड पृथ्वी का हृदय है और इन दोनों के मध्य का भाग प्रावरण (मैंटल) है।

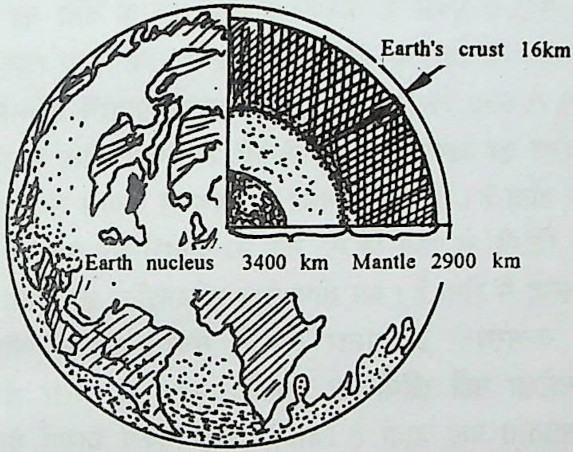


चित्र-6 : पृथ्वी का आकार

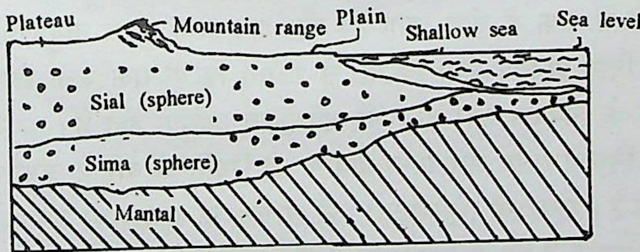
इन तीनों परतों की प्रकृति और संरचना परस्पर भिन्न है। सामान्यतया जितना गहरे जाएंगे, उतना ही घनत्व बढ़ता जाता है। उसी अनुपात में तापक्रम और दाब ऊंचा होता जाता है।

भूतल पृथ्वी की कठोर त्वचा के समान है जो औसतन नीचे 16 किमी. गहराई तक है। यह अपनी प्रकृति और रासायनिक संरचना में भिन्न-भिन्न प्रकार की चट्टानों से निर्मित है। भूतल की मोटाई स्थान-दर-स्थान बड़े विचित्र तरीके से भिन्नता दर्शाती है। महासागरीय भूतल काफी पतला होता है जो कुछ भागों में लगभग 5 से 8 कि.मी. मोटा होता है। पहाड़ों और पठारों के नीचे का भूतल अधिक से अधिक 80 कि.मी. तक मोटा होता है। समतल

और उथले समुद्र के नीचे का भूतल लगभग मध्य की मोटाई का होता है जैसा कि चित्र-8 में दर्शाया गया है।



चित्र-7 : पृथ्वी की आन्तरिक संरचना



चित्र-8 : पृथ्वी का महाद्वीपीय एवं महासागरीय भूतल

महासागरीय भूतल मुख्यतया असिताश्म (बैसाल्ट) का बना होता है जिसमें सिलिका, मैग्नीशियम तथा लौह की मात्रा अधिक होती है। भूतल की यह परत साइमा के नाम से पुकारी जाती है। महाद्वीपीय भूतल (जिसमें महाद्वीप का सीमावर्ती भाग भी शामिल है) में दो परतें होती हैं–ऊपरी परत सिअल कहलाती है। यह मुख्य रूप से ग्रेनाइट से बनी होती है। इसमें सिलिका एवं एल्यूमीनियम की अधिकता होती है तथा यह निचली सतह साइमा से हल्की होती है, जो अक्सर पतली होती है। इन दोनों के मध्य में एक अनियमित सीमा होती है जिसे कोनराड असततता कहा जाता है।

इसी के कारण भूकंप की धारा के वेग में परिवर्तन होता है।

मध्य भाग प्रावरण (मैन्टल) भूतल की निचली सतह सीमा (16 किमी. के बाद) से पृथ्वी के केन्द्रीय नाभिक क्षेत्र के बीच का भाग होता है जो लगभग 17 कि. मी. से 2900 कि.मी. तक फैला होता है। इसमें ऊपरी भाग से 650 कि. मी. गहराई तक ऊपरी प्रावरण कहलाता है। इस ऊपरी प्रावरण का ऊपरी भाग 50 कि.मी. तक फैला होता है और यह दृढ़ प्रस्तर क्षेत्र होता है। रेडियोधर्मी तत्वों के क्षरण से उत्पन्न उच्च तापक्रम के कारण 50 कि.मी. से 250 कि.मी. तक का प्रावरण क्षेत्र प्रगलित या अल्प प्रगलित अवस्था में होता है। यह क्षीण परत संवेदनशील क्षेत्र होता है। यही शैलमूल की जन्मस्थली है। प्रस्तर क्षेत्र से संवदेन क्षेत्र के बीच कोई निश्चित सीमारेखा नहीं खींची जा सकती। भूतल से प्रस्तर क्षेत्र के बीच एक असततता पाई जाती है जिसके द्वारा भूकंप धाराएं बेतरतीब से अपना वेग परिवर्तित कर लेती हैं। ऊपरी प्रावरण क्षेत्र में तापक्रम 1200 से 1500 डिग्री सें. तक के बीच रहता है। और दाब 500 हजार वायुमण्डलीय होता है। निम्न प्रावरण 650 कि.मी. से 2900 कि.मी. तक फैला होता है। इस क्षेत्र के तापक्रम और दाब भी अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। ऊपरी प्रावरण की निचली सतह और निम्न प्रावरण की स्थिति के बारे में अभी बहुत कम ज्ञान है। उल्काश्मों (ऐरोलिट्स) की संरचना के आधार पर हम यह अनुमान कर सकते हैं कि संभवतया इसमें लौह एवं मैग्नीशियम युक्त कुछ अधिक सघन आक्साइड एवं सिलिकेट हो सकते हैं।

प्रावरण से नीचे का भाग भूकेन्द्र होता है इसे भी दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। बाहरी भूकेन्द्र संभवतया द्रवीय होता है और आन्तरिक भूकेन्द्र ठोस होता है। प्रावरण और भूकेन्द्र के बीच भी एक सीमारेखा होती है जिसे गुटेनबर्ग असतत रेखा कहा जाता है। यह भी भूकंप धाराओं के वेग को प्रभावित करती है।

पृथ्वी गोलाकार परतों वाली क्यों है ? पृथ्वी के आन्तरिक प्रदेशों में अवस्थित पदार्थ इतने घातक क्यों हैं ? पृथ्वी के भूकेन्द्र की ओर बढ़ते

हुए घनत्व में वृद्धि क्यों होती जाती है ? यद्यपि मानव इन प्रश्नों के हल की तलाश में रहता आया है पर अभी तक भी जो समाधान प्राप्त हुए हैं उन पर एक मत नहीं हुआ जा सका है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भविष्य में विज्ञान और टेक्नोलाजी के विकासक्रम में इन प्रश्नों का कोई सुनिश्चित सूत्र अवश्य मिलेगा ताकि कोई हल प्राप्त हो सके।

2

भूपटल का स्वरूप

1. भूसतह का विस्तार

पृथ्वी की ऊपरी सतह अण्डे की ऊपरी पर्त के समान पतली होती है पर उस तरह समतल न होकर अनियमित उभारों एवं गर्त वाली होती है। इसमें अनेक प्रकार के प्राकृतिक दृश्य दिखलाई पड़ते हैं। पृथ्वी की इस ऊपरी सतह पर ही लगभग 5 अरब प्राणी वास करते हैं। यहीं से वे अपना भोजन और अन्य आवश्यकता की वस्तुएं भी पाते हैं।

समस्त पृथ्वी का लगभग 71% भाग जल है। परिमाण की दृष्टि से यह लगभग 36.1 करोड़ वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल है जिसमें महासागर फैले हुए हैं। पृथ्वी के 29% भाग अर्थात 14.9 करोड़ वर्ग कि.मी. क्षेत्रफल में महाद्वीपों का फैलाव है। संक्षेप में कहें तो पृथ्वी के भूपटल में महासागर एवं महाद्वीप का अनुपात 7:3 है।

भूसतह की सर्वोच्च ऊंचाई वाला स्थल हिमालय पर्वत की एवरेस्ट की चोटी है जो सबसे ऊंचे पर अविस्थत है। चीन और नेपाल के सीमा प्रदेश पर स्थित एवरेस्ट की ऊंचाई समुद्र तल से 8848.13 मीटर है। जार्डन एवं फिलीस्तीन के बीच मृतसागर का तल समुद्र तल से 392 मीटर नीचा है जो सबसे कम ऊंचाई वाला तल है। इसके अतिरिक्त इधर-उधर ऊबड़-

खाबड़ और बेतरतीब पहाड़ियां, चोटियां हैं और विशाल फैला हुआ मैदानी क्षेत्र है। पृथ्वी तल के आकार और भिन्न ऊंचाई के अनुसार भूसतह को पांच प्रकार की स्थल आकृतियों में विभाजित करके देखा जा सकता है। समतल, पठार, कछार, पहाड़ी तथा पर्वतीय प्रदेश। ये सभी जटिल प्रकार से आड़े-तिरछे रूप में फैले हुए हैं जिससे ज्ञात होता है कि भूसतह बड़ी ऊबड़-खाबड़ और बेडौल है।

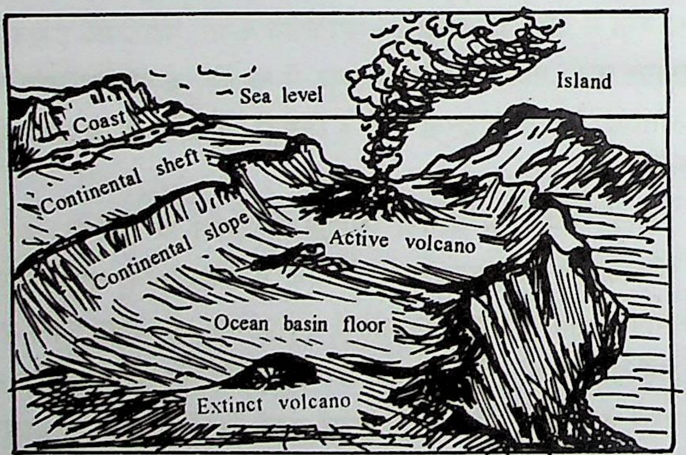
असीमित और दूर तक फैले महासागरों का तल भी समतल नहीं है। अतः समुद्री प्रदेश स्थलीय सतह से काफी भिन्न हैं। समुद्री सलह भी तीन प्रमुख रूपों में देखी जा सकती है—महाद्वीपीय कगार, महाद्वीपीय ढलान तथा महासागर तल। महाद्वीपीय कगार समुद्र में महाद्वीप के विस्तार वाला भाग कहलाता है। यह थोड़ा ढलवां होता है जिसकी गहराई 200 से 300 मीटर तक होती है।

इसकी भौगोलिक संरचना महाद्वीप के समान ही होती है। यह तो सूर्य की किरणों का सुफल है कि वे पानी में प्रवेश करके समुद्री किनारों के समीपस्थ क्षेत्र में समुद्री वनस्पतियों एवं प्राणियों को जीवन प्रदान करते हुए उन्हें पनपने का सुअवसर देती हैं। समुद्र की ओर तट के समीप तल क्षेत्र पहले प्रयुक्त हुए और उनकी खुदाई करके तेल निकालने और उपयुक्त स्थान पर भेजने की सुविधा के कारण ही यह संभव हो सका।

कगार से समुद्र की ओर गहराई तथा समुद्र तल का अनुपात तेजी से बढ़ता है। महाद्वीपीय कगार और महासागरीय तल के बीच का प्रदेश महाद्वीपीय ढलान का होता है। ये ही महासमुद्र और महाद्वीप की सीमा हैं। महासागरीय तल ही महासागरीय भूपटल का मुख्य भाग होता है। शुष्क स्थल के समान ही इसकी स्थलीय संरचना भी विविधता लिए होती है। हजारों मील तक असंख्य मध्यसागरीय टीले पाये जाते हैं।

समुद्री पर्वतमालाएं दूर-दूर तक फैली होती हैं। यहीं जगह-जगह समुद्री ज्वालामुखी के उभार भी दिखलाई पड़ते हैं। गहरे रसातल की सतह समतल

होती है। यहां सर्वाधिक गहराई लम्बी संकरी गहरी समुद्री दरारों में पाई जाती है जो विशेषकर द्वीप के समीप और उससे लगे समुद्री प्रदेश के आसपास के क्षेत्र में हैं, जैसा कि पश्चिमी प्रशान्त महासागर के क्षेत्र में मारियाना की सर्वोच्च गहरी समुद्री दरारें हैं। (चित्र-9) इनकी गहराई 11034 मीटर है! एवरेस्ट की चोटी से इन दरारों के तल की दूरी 20 हजार मीटर है। विशेष स्थलाकृतिक इकाइयों का क्षेत्रफल भिन्न-भिन्न होता है इसे आगे सारणी में दर्शाया गया है।



चित्र-9 : समुद्री स्थलाकृति

क्या भूसतह और समुद्री स्थल का विभाजन सदियों से ऐसा ही बना हुआ है ? क्या जल और थल प्रदेश अपने उद्‌भव के समय से अपरिवर्तित ही चले आ रहे हैं ? भूसतह का पर्वतों और घाटियों में रूपान्तरण किस प्रकार घटित हुआ ? हम आज भी इन प्रश्नों के समाधान की खोज में लगे हुए हैं।

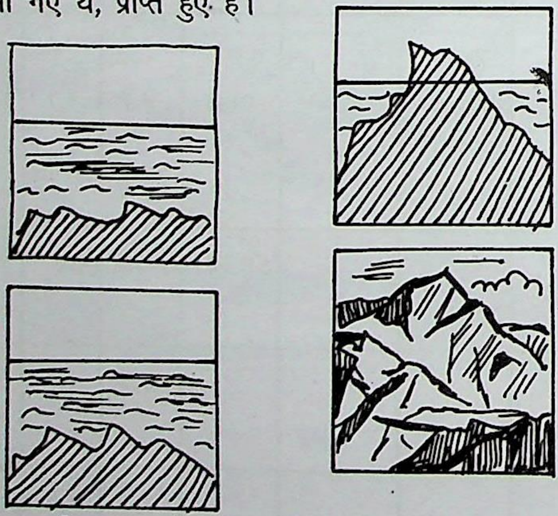
समुद्री सतह का क्षेत्रफल, गहराई और स्थलाकृतियों के ढलान का विवरण

इकाई	गहराई (मी. में)	फैलाव कि.मी. में	ढलान	क्षेत्रफल वर्ग कि.मी.	कुल समुद्र सतह का %	कुल महाद्वीप सतह का %
महाद्वीपीय कगार एवं ढलान	200 अधिकतम 500	4 से 1000	0.10	>55.4	15.3	10.9
महाद्वीपीय उभार	1400-3200	20-90	4.3(20)		5.3	3.8
द्वीप क्षेत्र तथा गहरी समुद्री दरारें	2000/6000 गहनतम 11035		0.01-0.0143	6.1	1.7	1.2
समुद्री समतल सतह	4000/5000		<0.001	151.5	41.8	29.7
समुद्री ज्वालामुखी, समुद्री पवर्तमालाएं				5.7	1.6	1.1
समुद्री सतही पहाड़ियां				5.4	1.5	1.1
मध्य महासागरीय पहाड़ियां				118.6	32.7	23.2

2. परिवर्तनशील भूपटल

प्राचीन शास्त्रों के अध्ययन से यह तथ्य प्रकट होता है कि हजारों वर्ष पूर्व समुद्र मैदान में परिवर्तित हो गया था। भूप्रदेश और समुद्र क्षेत्र सदैव अपरिवर्तित नहीं रहते बल्कि निरन्तर परिवर्तन करते रहते हैं।

पर्वत श्रेणी क्रम में सर्वोच्च ऊंचाई वाला हिमालय पर्वत पहले इतना ऊंचा नहीं था जितना आज दिखलाई पड़ता है। जिस विस्तृत भूक्षेत्र पर आज यह उन्नत शिखर वाला हिमालय अवस्थित है वहां प्राचीन काल में लगभग 3 करोड़ वर्ष पूर्व एक गहरा भूमध्य सागर था। हिमालय का भूपटल 2 अरब वर्ष पूर्व से 3 करोड़ वर्ष पूर्व तक गहरे धंसता चला गया और इस लम्बे समयान्तराल में 30 हजार मीटर मोटा जमाव हो गया। इसकी तलहट में अनेक जन्तु और वनस्पतियों के जीवाश्म, जो कभी गहन समुद्र में समा गए थे, प्राप्त हुए हैं।



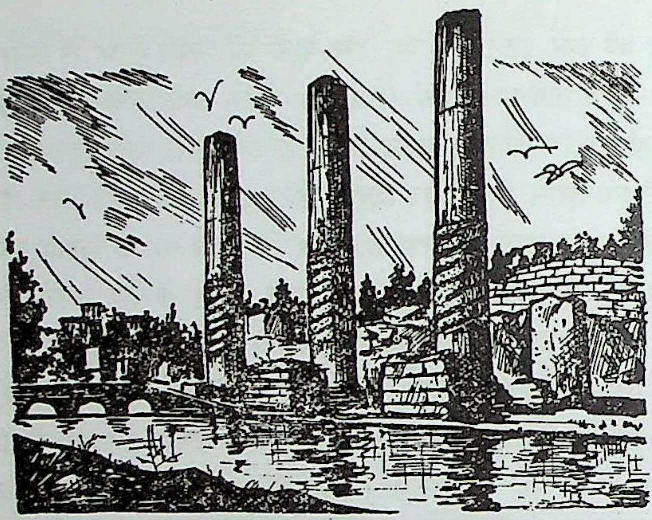
चित्र-10 : रेखांकित चित्र—समुद्र से उठता हिमालय

इन उदाहरणों से हिमालय के भूपटल का रचनागत प्रमाण प्राप्त होता है।

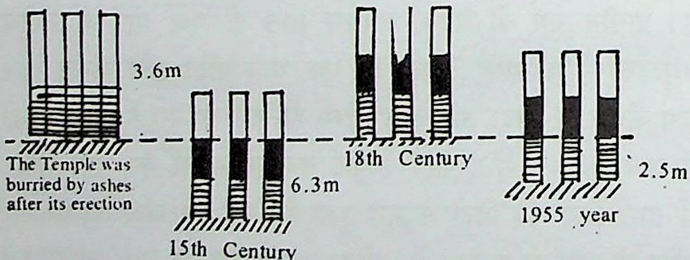
लगभग 3 करोड़ वर्ष पूर्व एक ऐसी भूगर्भीय क्रांति हुई कि हिमालय की सतह ऊपर की ओर उठती चली गई। समुद्र के अन्तर में समाए तत्व

ऊपर की ओर उठते चले गए और पानी की ऊपरी सतह से ऊपर आने लगे। आज लगभग 4100 से 4500 मीटर ऊंची हिमालय की बर्फीली चोटियों पर जो जीवाश्म संकेत मिलते हैं उनसे यही प्रमाणित होता है कि इस समयान्तराल में हिमालय 3000 मीटर ऊंचा उठ गया। आज हिमालय निरन्तर ऊंचा उठता जा रहा है। जैसा कि चित्र-10 में दर्शाया गया है। बहरहाल, यह त्वरित परिवर्तन हम अपनी आंखों से देख सकते हैं।

जिस प्रकार समुद्री सतह ऊंची उठते हुए पर्वताकार रूप में ढलती चली गई उसी प्रकार भूसतह भी भूगर्भीय परिवर्तनों के फलस्वरूप आज समुद्र में परिवर्तित हो गई। इसका प्रामाणिक साक्ष्य ताइवान भूपटल के अवलोकन से पाया जा सकता है। इसकी तलहटी से मुख्य भूसतह तक प्रेक्षण करने से यह तथ्य साफ प्रकट हो जाता है। आधुनिक भू प्रत्यावर्तन का प्रतिरूपी उदाहरण इटली की नापल्स की खाड़ी की बदलती हुई तट-रेखा है। प्राचीन रोम के समय, लगभग 105 ई. पूर्व, यहां के तटीय शहर पजुओली में बृहस्पति देवता का एक भव्य मंदिर हुआ करता था। आज वहां केवल 12 मीटर ऊंचे तीन स्तम्भ ही खड़े रह गए हैं। (चित्र-11) सतह से ऊपर 3.6 से 6.3 मीटर ऊंचाई तक के स्तम्भ का भाग छिद्र मशीन के द्वारा किए गए छिद्रों से भरा हुआ है। यह इस बात का प्रमाण है कि मंदिर के ध्वंस के पश्चात 3.6 मीटर तक स्तम्भ का भाग ज्वालामुखी पर्वत से निकलने वाले लावे से ढक गया था। धीरे-धीरे यह 8 मीटर तक उसमें डूब गया। 15वीं शताब्दी तक यह क्षेत्र समुद्र जल में डूबा रहा। 18वीं शताब्दी में समुद्री जल का स्तर नीचे आ गया तब ये स्तम्भ जल से बाहर झलकने लगे। भूसतह के प्रत्यावर्तन के कारण 1955 तक ये स्तम्भ फिर 2.5 मीटर ऊंचाई तक जलमग्न हो गए। क्षरण की यह दर 2 से.मी. प्रतिवर्ष के हिसाब से नियमित बनी रही। इस उदाहरण से स्पष्ट है नापल्स खाड़ी के तटीय प्रदेश के स्वरूप में परिवर्तन होता रहा।



चित्र-11 : नापल्स मंदिर के भग्नावशेष



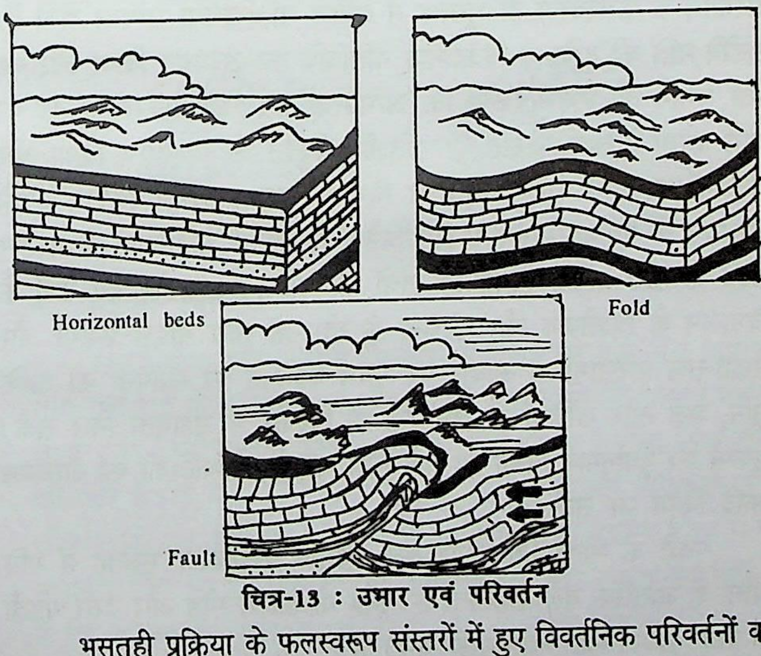
चित्र-12 : समुद्र तल के बदलते संकेत

पृथ्वी का बाहरी स्वरूप निरन्तर परिवर्तित होता रहा है और इसका जो स्वरूप आज हमारे सामने है, वह भूसतह के विकास की एक लम्बी प्रक्रिया के इतिहास पर दृष्टि डालने से स्पष्ट होता है। जैसे एक दृश्य के बाद दूसरा दृश्य उभरता है उसी प्रकार भूपटल के स्वरूप के परिवर्तन की प्रक्रिया है।

3. भूपटल का स्व-परिवर्तन

जब हम मैदानों में उस भूमि की परतों की संरचना का प्रेक्षण करते

हैं, जो पर्वत या पहाड़ियों को रचती हैं तो हम पाते हैं कि उनमें से कुछ समतल या क्षैतिज आकार के होते हैं इसके विपरीत इनमें बहुत से घुमावदार और पलटने की स्थिति तक ऊर्ध्वाधर इतने झुके हुए होते हैं कि नए संस्तरों पर पुराने संस्तर छा जाते हैं। इससे कुछ संस्तर पूरी तरह टूटकर टुकड़ों में बिखर जाते हैं। यह घटना क्यों और कैसे घटती है ? इसका उत्तर यही है कि लंबी भूगर्भीय प्रक्रिया में कुछ संस्तर मूल रूप से जो क्षैतिजनुमा या लगभग समतल होते हैं वे घूमकर मुड़ ज़ाते हैं और इनमें कुछ संस्तरों के टूटने के कारण दरारें पड़ जाती हैं लेकिन यह क्रिया बड़े लंबे समय अंतराल में घटित होती है। (चित्र-13) इस भूसतही घटना के परिणामस्वरूप संस्तरों की प्रारंभिक स्थिति और संरचना में विकृति आ जाती है। इस विकृति को विवर्तनिक परिवर्तन कहा जाता है।



चित्र-13 : उभार एवं परिवर्तन

भूसतही प्रक्रिया के फलस्वरूप संस्तरों में हुए विवर्तनिक परिवर्तनों का अध्ययन करते हुए यह पाया गया कि इसमें ऊपरी आवरण में संग्रहीत तत्वों के रेडियोधर्मी क्षय के परिणामस्वरूप एक बड़ी मात्रा में ऊष्मा ऊर्जा की

प्राप्ति होती है। ऊपरी परत के ऊपरी भाग की चट्टानें उच्च ताप के कारण अधिकांश रूप में प्रगलित अवस्था में होती हैं। कमजोर परत कृशकाय क्षेत्र होता है जिससे तरल प्लास्टिक प्राप्त होता है।

इस कृशकाय भाग का भौतिक चरित्र समस्त पृथ्वी पर समान नहीं होता। जहां इस कृशकाय भाग में उच्च ताप होता है वहां पदार्थों का संवहन होता है। उष्ण पदार्थों का बहाव उष्ण परत से होकर किनारों से होने लगता है और इस तरह ये अंत में एक खाई में जाकर बैठ जाते हैं। यह प्रक्रिया अश्म क्षेत्र को प्रभावित करते हुए भूसतह की समतल गतिविधियों को जन्म देती है। इस प्रकार संस्तरों के दबने, आकार में बढ़ने अथवा विकृत होने के फलस्वरूप इनकी प्राथमिक संरचना पूरी तरह परिवर्तित हो गई।

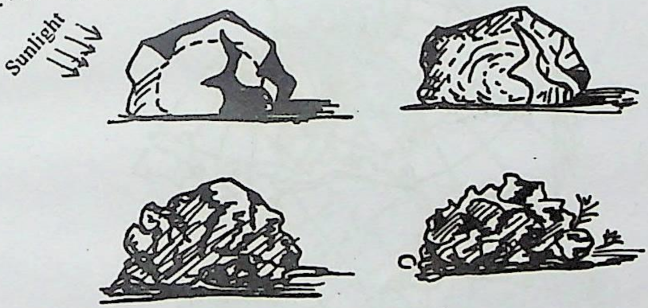
भूगर्भविज्ञानियों के अनुसार पृथ्वी के घूमने और घूमने की दर के परिवर्तन के फलस्वरूप ही भूसतह में क्षैतिज गतिविधियां सम्पन्न होती हैं। उन्होंने गति की दृष्टि से विवर्तनिक गतिविधि का अध्ययन किया और यह पता लगाने का प्रयास किया कि अभिप्रेरक बल किस प्रकार भूसतह पर कार्य करता है तथा भूसतह की गतिशील प्रकृति का विश्लेषण किया और चट्टानों पर पड़ने वाले दबाव के विभाजन का अध्ययन किया। अपने अध्ययन के परिणामस्वरूप उन्होंने अनेक विवर्तनिक प्रक्रियाओं के परस्पर घटने के द्वारा अनेक विवर्तनिक तंत्रों को पहचाना। उन्होंने इन तंत्रों के विभाजन के विश्लेषण और संरचना के योग के साथ मॉडल प्रयोगों और सैद्धान्तिक परिणामों के आधार पर भूगर्भ यांत्रिकी की स्थापना की ताकि भूमि, जल और खजिनों के संसाधनों के विस्तार में सहायता मिल सके। भूकंपों का पूर्वानुमान किया जा सके तथा भूगर्भ अभियांत्रिकी का अध्ययन आदि किया जा सके।

पृथ्वी के भीतर क्रियाशील बल, जिसके फलस्वरूप भूसतह में गति आती है आंतरिक बल कहलाता है। इसी के कारण मोड़ और दरारें पड़ती हैं तथा भूकंप तथा ज्वालामुखी बनते हैं।

दूसरी ओर सूर्य का प्रकाश, हवा, पानी, जीवाणु और जीवधारी आदि अनेक ऐसे कारक हैं जिनके फलस्वरूप खुली चट्टानें नष्ट होती हैं और

कचरे, रेत और मिट्टी में बदल जाती हैं। हवा और पानी के द्वारा भू. अपरदन तथा इनका एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना घटित होता है। मलबा, रेत और मिट्टी निचली सतह पर आ जाते हैं और दरारों को भरते हैं। जो बल पृथ्वी के बाहर से कार्य करता है और भूसतह को समतल करता है बाह्य बल कहलाता है।

आंतरिक बल पृथ्वी की सतह को शांत करता है और बाह्य बल उसे समतल करता है। ये दोनों बल पृथ्वी की सतह पर एक साथ कार्य करते हैं। ये इसके बाह्य स्वरूप को निखारते हैं और साथ ही साथ अनेक प्राकृतिक दृश्यों की संरचना करते हैं।



चित्र-14 : चट्टानों में तापक्रम से होने वाले परिवर्तन

4. पट्टिका विवर्तन

महाद्वीपीय बहाव—यदि विश्व के मानचित्र को देखें और महासागर तथा महाद्वीपों के विभाजन पर ध्यान दें तो हम पाएंगे कि प्रत्येक महाद्वीप थोड़ा बहुत त्रिकोणात्मक आकार लिए है और इसका नुकीला सिरा दक्षिण की ओर है। 6 महाद्वीप तीन समूहों में बंटे हुए हैं और अंटार्कटिका को छोड़कर जो एक सिरे पर है, आमतौर पर सभी उत्तर दक्षिण दिशा में एक समानता लिए हुए हैं। एक अत्यन्त आनन्ददायक और उल्लेखनीय बात यह है कि अटलांटिक महासागर के दोनों ओर ही तटीय-रेखा में भी समानता है। दक्षिणी अटलांटिक की ओर दक्षिणी अमेरिका के भूभाग को देखते हुए, जहां ब्राजील स्थित है, यदि अफ्रीका के छिछले समुद्र तट को उससे जोड़

दें, ये सिरे एक-दूसरे से पूरे इस प्रकार मिल जाते हैं मानो एक ही क्षेत्र के दो खण्ड हों। यह एक इत्तफाक नहीं तो और क्या है ? (चित्र-15)

शताब्दी के प्रारम्भ में एक जर्मन पदार्थ विज्ञानी बैग्नर ने इस तथ्य पर ध्यान दिया। साथ ही अन्य दूसरे भूगर्भीय तथा विज्ञानी (Anthropological) साक्ष्यों के आधार पर महाद्वीपीय अपवहन की परिकल्पना की। इस परिकल्पना के अनुसार यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आज ये दूर-दूर स्थापित महाद्वीप लगभग 30 करोड़ वर्ष पूर्व परस्पर



चित्र-15 : अटलांटिक महासागर की सीमा रेखा

मिले हुए थे। यानि समस्त भूमि एक थी और चारों तरफ से एक बड़े महासागर से घिरी हुई थी। दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका, भारत और आस्ट्रेलिया मूल रूप में एक-दूसरे से संयुक्त गोंडवाना भूस्थल के रूप में जाने जाते थे। इसके उत्तर में लौरेशिया भूस्थल था जिसमें यूरेशिया और उत्तरी अमेरिका स्थित थे। इन दो विशाल भूस्थलों के मध्य में भूमध्यसागर

अवस्थित था। इस विशाल महाद्वीप का विखण्डन लगभग 20 करोड़ वर्ष पूर्व होना प्रारम्भ हुआ जब बड़े भूखंड में दरारें पड़नी प्रारम्भ हुईं। तब अमेरिका पश्चिम की ओर खिसक गया, इसके पीछे अटलांटिक फैल गया। अफ्रीका, भारत और आस्ट्रेलिया उत्तर की ओर खिसक गए और इस तरह धीरे-धीरे इनकी वर्तमान स्थिति का स्वरूप उभरकर सामने आया। (चित्र-16)



a



b

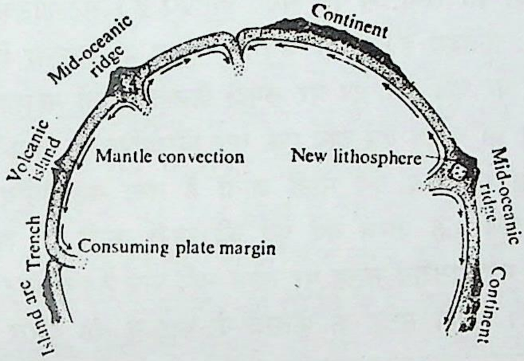
चित्र-16 : महाद्वीपीय विभाजन

बैग्नर के समय विभिन्न भूगर्भीय नमूनों में, महाद्वीपों के खिसकने के सिद्धान्त से पूर्व यही माना जाता था कि पृथ्वी गोल है और स्थिर है। इस स्थिरता के पक्षधरों का मानना था कि स्थल भाग और महासागर के निर्माण का मुख्य कारण भूसतह के विभिन्न भागों का ऊपर उठना या नीचे धंसना ही है। उनका विचार था कि प्राचीन महासागरों एवं महाद्वीपों का स्थितिगत परिवर्तन पृथ्वी के अक्ष और भूमध्य रेखा से संबंधित है और पृथ्वी के अक्ष तथा भूमध्य रेखा की स्थिति में परिवर्तन का ही परिणाम है। बहरहाल, महाद्वीपीय विस्थापन भू-अक्ष तथा विषुवत रेखा की अवस्था परिवर्तन से भी होता है। पर यह महाद्वीप के महासागर में सापेक्ष विचलन पर आधारित होता है। इन सभी पार्श्व विचलनों के फलस्वरूप ही महाद्वीप गतिमान हो

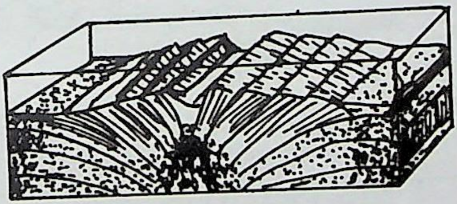
उठते हैं। अतः जिन्होंने समुद्र को हिलोरें लेते और महाद्वीप को थोड़ा उभरते देखा है उनके लिए महाद्वीपीय खिसकाव के लिए ऐसी परिकल्पना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं। निश्चय ही महाद्वीपीय खिसकाव की परिकल्पना जहां एक ओर अपनी क्रिया पद्धति में एक घातक कमजोरी जतलाती है वहीं कुछ आवश्यक तर्क भी प्रस्तुत करती है अतः विज्ञान जगत में यह एक जिज्ञासा जगाकर शांत हो गयी।

पांचवें दशक के मध्य में, पुराचुम्बकीय विज्ञान की तेजी से प्रगति हुई और भिन्न-भिन्न महाद्वीपों की माप-जोख करके यह तथ्य सामने आया कि पुराचुम्बकीय ध्रुवों और ध्रुवीय घूर्णन के मोड़ों में समानता नहीं है बल्कि इनमें एक तंत्रगत त्रुटि है। यदि हम महाद्वीपों की स्थिति को समंजित कर लें तो घूर्णन मोड़ों और पुराचुम्बकीय ध्रुवों की स्थिति काफी सीमा तक मिल सकती है। अतः जब तक कोई नई बात उभरकर सामने न आए, तब तक परिकल्पना के बाद उभरे महाद्वीपीय खिसकाव के प्रति रुचि के पुनर्जागरण का विचार कुछ समय के लिए ठंडा पड़ गया।

समुद्र तल के फैलाव का संस्थापन—महासागरीय विज्ञान के विकास ने सागर तल के बारे में हमारे ज्ञान में काफी वृद्धि की है और इस सन्दर्भ में पर्याप्त आंकड़े भी प्राप्त हुए हैं। अमेरिकी भूगर्भ विज्ञानी एच. एच. हैस ने 1961 में सागर तल के बारे में एक परिकल्पना प्रस्तुत की। वैज्ञानिकों ने खोज की कि प्रत्येक महासागर के तल पर एक मध्य महासागरीय पर्वत माला होती है जो 10000 कि.मी. तक भी फैली होती है। परिकल्पना यह थी कि प्रगलित बाह्यावरण पदार्थ भूसतह के मध्य महासागरीय पर्वतश्रेणी से उठा और ठंडा होने पर ठोस अवस्था में आकर यह पर्वत श्रेणी के भीतर या बाहर फैल गया और इस तरह नई पटल की रचना हुई। नया पदार्थ पूर्वनिर्मित पटल को निरन्तर विभाजित करता गया और हर हिस्से को शिखर से किनारे की ओर खिसकाता गया। और इस तरह नई पटल ने उस खाली जगह को भर दिया। (चित्र-17,18) यह प्रक्रिया आगे जारी रहने पर समुद्र तल निरन्तर फैलता चला गया।



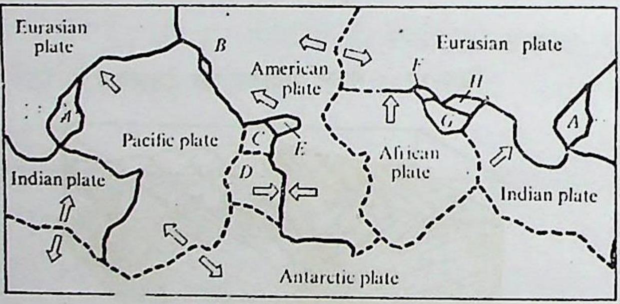
चित्र-17 : मैंटल संवाहन का रेखाचित्र



चित्र-18 : ऊपर उठती धाराओं के साथ उठता केंद्रीय पदार्थ

खोजों से यह स्पष्ट होता है कि कोई चट्टान मध्य महासागरीय पर्वत माला के जितना निकट होगी वह उतनी ही युवा और जितनी दूर होगी उतनी ही प्रौढ़ होगी। समुद्र तल के फैलाव के सन्दर्भ में यह एक प्रमाण हुआ। समुद्र तल के फैलाव और महासागरीय सतह की पार्श्व क्रियाओं के बीच टकराहट उस समय उत्पन्न होती है जब महासागरीय सतह महाद्वीपीय पटल से मिलती है। महासागरीय सतह अधिक सघन होने के कारण महाद्वीपीय सतह के नीचे प्रावरण में गोता लगा देती है। इस प्रकार महाद्वीपीय पटल के ऊपर उठान से द्वीपीय चाप या तटीय पर्वत उठ खड़े होते हैं और जहां महासागरीय पटल गोता लगाती है वहां गहरी समुद्री दरारें पड़ जाती हैं।

विश्वभर में फैलाव की दर अक्सर समान नहीं होती। पूर्वी प्रशान्त क्षेत्र में यह दर 10 सेमी. से 12 सेमी. प्रतिवर्ष है। अटलांटिक में यह दर 2 से 3 सेमी. प्रतिवर्ष है। ये दरें भूगर्भीय समय के अनुसार निर्धारित हुई हैं। ऐसा होने पर यदि इसी दर पर समुद्री फैलाव हो तो महासागरीय पटल प्रत्येक 20 से 30 करोड़ वर्ष बाद एक बार विस्थापित हो जायेगी। हालांकि पृथ्वी की उम्र 5 अरब वर्ष मानी जाती है तथा महाद्वीपीय पटल की प्राचीनतम चट्टान 4.6 अरब वर्ष पूर्व क़ी मानी जाती है। लेकिन अभी वैज्ञानिक इसे महासागरीय सतह पर खोज नहीं पाए है। तलछट 20 करोड़ वर्ष पुरानी है। समुद्री सतह के फैलाव के पक्ष में यह दूसरा प्रमाण है।



चित्र-19 : विभिन्न पट्टिकाएं

पट्टिका विवर्तन की उत्पत्ति—पट्टिका विवर्तन, सार्वभौम विवर्तन समुद्र तल के फैलाव का ही परिणाम है। जहां तक अश्म स्तर (लिथोस्फियर) का सम्बन्ध है यह एक रचना नहीं होती है बल्कि शायद इसकी रचना भिन्न-भिन्न आकार की एक दर्जन पट्टिकाओं से होती है। इनमें से 6 प्रमुख पट्टिकाएं प्रशान्त पट्टिका, यूरेशिया पट्टिका, अफ्रीकी पट्टिका, अमेरिकी पट्टिका, अंटार्कटिक पट्टिका और भारत पट्टिका होती हैं। (चित्र-19) इनमें अंतिम पांच पट्टिकाएं महासागरीय और महाद्वीपीय सतह दोनों से मिलकर बनी हैं जबकि प्रशान्त पट्टिका पूरी तरह महासागरीय भूसतह से बनी है। सभी पट्टिकाएं निरन्तर चालन करती रहती हैं। सामान्यतया पट्टिका के केन्द्र के समीप की सतह अपेक्षाकृत स्थायी होती है और दो पट्टिकाओं का सीमावर्ती क्षेत्र अधिक क्रियाशील होता है।

पट्टिका विवर्तन (Plate Tectonic) के अनुसार महासागर और महाद्वीप दोनों के उत्पन्न और नष्ट होने का अपना समय होता है। प्राचीन भूमध्य सागर जो 'टेथीस' के नाम से जाना जाता था, पूर्व-पश्चिम से यूरेशिया पट्टी की ओर गोंडवाना के बीच में स्थित था। लेकिन यह विराट टेथीस महासागर आज विनाश के कगार पर है और सीमान्त क्षेत्र के रूप में ढल गया है। तब फिर महासागर का उत्पत्ति स्थल कहां हैं ? पट्टिका विवर्तन के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि पूर्व अफ्रीकी उठान घाटी एक नवोदित महासागर है। लाल सागर और अदन की खाड़ी अपने फैलाव में अभी एक उभरते हुए महासागर की स्थिति में है, अटलांटिक पूर्ण वयस्क महासागर है किन्तु अभी भी फैलता जा रहा है। प्रशान्त महासागर भी यूरेशिया और अमेरिका महाद्वीप के द्वारा उत्पन्न दबाव को सह पाने में असमर्थ होने के कारण अपने व्यास में सिकुड़ता जा रहा है। और छोटे आकार का भूमध्य सागर अपने आपको सिकोड़ता हुआ एक रेगिस्तान की शक्ल ग्रहण करता जा रहा है। पूर्व महासागर की पड़ताल हिमालय और उत्तरी क्षेत्रों के सन्दर्भ में एक संधिरेखा के रूप में देखी जा सकती है।

महाद्वीपीय प्रवृत्ति, समुद्रतल का फैलाव और पट्टिका विवर्तन भूपटल के इतिहास की दृष्टि से एक विचित्र त्रिकोण बनाते हैं—प्रारम्भ में यह महाद्वीपीय झुकाव के रूप में जाना जाता था उसके बाद समुद्रतल का फैलाव और अन्त में पट्टिका विवर्तन से ही हमें पता चलता है कि पृथ्वी की ऊपरी परत में केवल ऊर्ध्वाधर गति ही नहीं होती बल्कि क्षैतिज गति भी होती है जो कितने ही कि.मी. की दूरी को प्रभावित करती है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि सक्रिय उतार-चढ़ाव चालू हैं और भूपटल पुनर्नवीनीकृत हो रही है, यहां लुप्त हो रही है, वहां मिल रही है। जहां महासागर का नाम भी नहीं था, वहां महासागर बन रहे हैं। दूसरी ओर जहां महासागर हैं, वहां वे लुप्त हो रहे हैं। यह पृथ्वी निष्क्रिय एवं शान्त गोला मात्र नहीं है बल्कि जीवन्त और आश्चर्य से भरी हुई अद्भुत प्राकृतिक रचना है।

3
पृथ्वी के अभिशाप : ज्वालामुखी एवं भूकंप

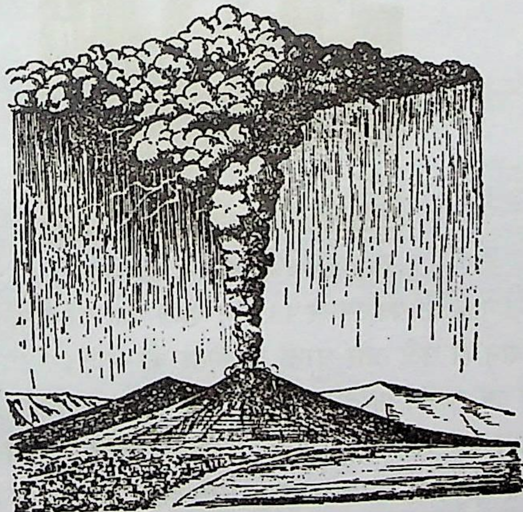
आंतरिक दबाव के प्रभाव के कारण भूपटल में मोड़ और दोष आ जाते हैं और ऐसे समय ऊर्ध्वाधर तथा क्षैतिजीय गति के कारण भूतह काफी ऊबड़-खाबड़ हो जाती है। सामान्यतया यह प्रक्रिया काफी धीमी होती है। लेकिन कई बार बड़ी घातक घटनाएं हो जाती हैं जिन्हें ज्वालामुखी विस्फोट (भूस्खलन) और भूकंप कहते हैं।

1. ज्वालामुखीय प्रवृत्ति

ज्वालामुखी विस्फोट एक दृश्यमान प्राकृतिक प्रक्रिया है। बहुत प्राचीन काल से ही ऐसे ज्वालामुखी विस्फोटों का वर्णन मिलता है। इनमें से एक का वर्णन करते हुए कहा गया है, "एक दिन पृथ्वी से आग की लपटें उठती देखी गई, पत्थर उछल रहे थे और चारों तरफ भयानक गड़गड़ाहट की गर्जना सुनाई दे रही थी। शीघ्र ही यह धुआं और लपटें ऊपर उठती हुई आकाश को छूने लगीं। भयानक विस्फोटक गर्जना की गूंज छा गई, रातभर विध्वंस होता रहा, आवाजें गूंजती रहीं और लावा दूर-दूर तक फैलता रहा।"

विस्फोट में यही होता है। ज्वालामुखी के विस्फोट से पूर्व आवाज धरती के भीतर गरजती है और पृथ्वी हिलने लगती है इसके बाद गरम

गैसें, लावा और पत्थर उबल-उबलकर निकलकर ऊपर हवा में उछलते हैं। ज्वालामुखी के विस्फोट से आकाश में कितने ही कि.मी. तक आग के बादल छा जाते हैं। शिखर से लाल रक्त-सा लावा बहता हुआ पहाड़ से नीचे गिरने लगता है। यह इतना अधिक घातक होता है कि जहां-जहां यह धरती पर बह निकलता है वहां फसल, मकान और जीव-जन्तु आदि को नष्ट कर डालता है। 79 ई. में विसुवियस ज्वालामुखी (इटली) के विस्फोट से जो लावा बहा वह 6 से 20 फुट मोटी परत के रूप में बहता हुआ वहां के दो नगरों पोमपई और हरकुलेनियम को नष्ट कर गया। (चित्र-20, 21)



चित्र-20 : विसुवियस ज्वालामुखी विस्फोट

पोम्पई का क्षेत्र तो अब काफी हद तक उभर गया है और दर्शनार्थियों के आकर्षण का मुख्य केन्द्र बन गया है। उसके बाद से आज तक विसुवियस ज्वालामुखी कभी शान्त नहीं हुआ। निरन्तर आग उगल रहा है। यह मार्च 1944 में फिर विस्फोटित हुआ।

अपनी त्वरित प्रक्रिया और विस्फोटक प्रकृति के कारण ज्वालामुखीय विस्फोट की पूरी प्रक्रिया का प्रेक्षण कर पाना बड़ा कठिन है। मैक्सिको

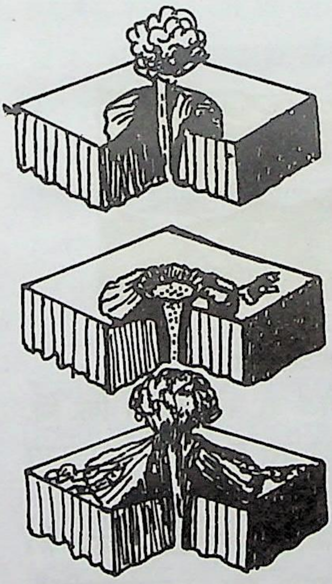
के पेरीक्यूटिन ज्वालामुखी के बनने से ज्वालामुखी की आन्तरिक प्रक्रिया को समझने में काफी सहायता मिली। ज्वालामुखी पर अध्ययन की दृष्टि से पेरीक्यूटिन ज्वालामुखी एक सक्रिय इकाई के रूप में अपनी उत्पत्ति की आश्चर्यजनक कहानी कहता है।



चित्र-21 : पोम्पई के खण्डहर

ज्वालामुखी के प्रकटन से 15 दिन पहले वहां की जमीन भयानक रूप से डोलायमान हो उठी और धरती के भीतर की भयानक टकराहटी आवाजें साफ सुनी जा सकीं। फरवरी 1943 में एक दिन एक किसान ने जो अपने खेत में काम कर रहा था, अचानक धरती के भीतर से जोरदार धमाके के साथ चट्टानों को बाहर उछलते देखा। उसने देखा एक छिद्र से धुएं का बादल निकल रहा है फिर एक दरार पड़ी और इस दरार में से उसी क्षण काला भयानक धुआं निकलता हुआ चारों तरफ फैल गया। उसकी नाक जलते गंधक की गंध से जलने लगी। दरार के आस-पास के वृक्ष झुलसने लगे, उनमें आग लग गई और पास की सारी हरियाली सूख गई। धुआं उगलने वाला छिद्र 2 मीटर व्यास का हो गया और इसके भीतर से उबलता हुआ लावा बाहर आने लगा। अगली सुबह खेत में उस छेद के पास लगभग दस मीटर ऊंची पहाड़ी सी बन गई। एक सप्ताह में यह पहाड़ी लगभग 100

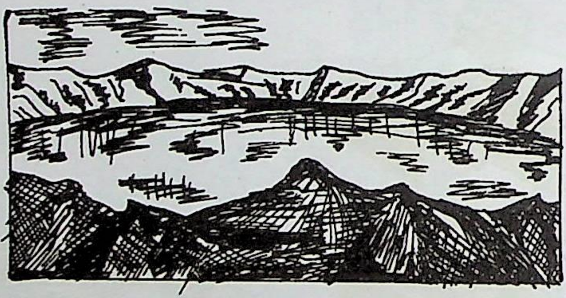
मीटर ऊंची हो गई। उसके छिद्र में से लावा पिघले लोहे की भांति उबलकर बह रहा था। सारा गांव उसकी चपेट में आ गया। सब जगह आग भड़क उठी। एक वर्ष में यह टीला 336 मीटर ऊंचा हो गया। इसके छिद्र में से 10 से 20 टन भार की बड़ी-बड़ी चट्टानें उछलकर बाहर आने लगीं। निकलने वाली गैसें और ज्वालाएं आकाश में 500 मीटर ऊंचाई तक फैल गईं और कई किलोमीटर क्षेत्र को घेर लिया। किसी व्यक्ति द्वारा अपने खेत से स्वयं अपनी आंख से उभरते ज्वालामुखी का यह दृश्य देखना बिल्कुल अनपेक्षित था। (चित्र-22)




चित्र-22 : बनते उभार   चित्र-23 : ज्वालामुखी बम

इस कहानी से यह साफ पता चलता है कि ज्वालामुखीय विस्फोट आन्तरिक भूगर्भ से शैलमूल के तेज प्रवाह का परिणाम होता है। भूगर्भ के कृशप्रदेश में उच्च ताप और दाब से गतिशील शैलमूल (मैग्मा) बाहर निकलने का मार्ग तलाशता है और पटल के उस कमजोर क्षेत्र से, बहुत से तिड़के हुए शैलमूल ऊपर की ओर उठ जाते हैं । गैस के फैलाव और वाष्प के घनीभूत होने से उत्पन्न दाब के कारण ये शैलमूल पर्त की तरह

फैलकर बैठ जाते हैं और इस तरह ज्वालामुखी की रचना होती है। लावा प्रत्येक दिशा में फैलता हुआ ठंडा होने पर कठोर चट्टान में बदल जाता है। यदि समय के प्रभाव में फिर से विस्फोट हो तो यह ज्वालामुखी और अधिक विस्तार वाला हो जाता है। किसी ज्वालामुखी से विस्फोटित लावा के कठोर टुकड़ों को ज्वालामुखीय बम कहा जाता है। (चित्र-23) और प्यालेनुमा गुहा को ज्वालामुख कहा जाता है जिस रास्ते से लावा आदि सारा पदार्थ बाहर आता है। कुछ ज्वालामुख पानी से भर जाते हैं और ये ज्वालामुखी झील बना देते हैं। (चित्र-24)



चित्र-24 : बेलशान की क्रेटर झील

चांग वेसन पर्वत शिखर पर बेतोशॉ चोटी पर बनी 13-11 कि. मी. परिधि की झील 373 मीटर गहरी है। यह समुद्र तल से 2200 मीटर ऊपर अवस्थित है इसलिए इसे 'स्वर्ग झील' कहा जाता है।

विश्व के अधिकांश ज्वालामुखी विस्फोट के समय उग्र हो जाते हैं। इनमें कुछ अपेक्षाकृत शांत होते हैं जैसे ह्वाइमान द्वीप के ज्वालामुखी हैं, इनमें से बाहर आने वाले पदार्थ की मात्रा काफी कम होती है और लावा भी धीरे-धीरे बाहर निकलता है।

अपनी सक्रियता के आधार पर ज्वालामुखी पर्वतों को 3 कोटियों में वर्गीकृत कर सकते हैं—सक्रिय, प्रसुप्त एवं निर्वापित। सक्रिय ज्वालामुखी वह कहलाता है जो वर्तमान में भी ज्वालामुखीय क्रिया करने में सक्रिय होता है और उग्र होता है जैसे किलाई और हवाई ज्वालामुखी। प्रसुप्त ज्वालामुखी

वे हैं जो कभी मानव इतिहास के खंड में सक्रिय थे पर अब काफी समय से वे उग्र नहीं हुए। समाप्त या निर्वापित ज्वालामुखी वे कहलाते हैं जो इतिहास में दर्ज काल खंड में कभी विस्फोटित हुए थे किन्तु अब मृतप्रायः हो गए हैं। यह विभाजन सही नहीं है। क्योंकि उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य के उत्तर पूर्व में वाशिंगटन राज्य में स्थित सेण्ट हैलन पर्वत 123 वर्ष से निष्क्रिय अवस्था में था लेकिन 27 मार्च 1980 को अचानक बड़े भयानक रूप में विस्फोटित हो उठा। इसके कुछ ही समय बाद 18 मई, 25 मई और 12 जून को इसमें फिर विस्फोट हुए। एक लम्बे समय बाद ये फिर भयानक रूप से उग्र हो उठा। इसमें 18 मई को लगभग एक अरब घन मीटर आयतन का मलबा और लावा फूट निकला, इससे 173 मीटर भूसतह कट गई तथा ऊंचाई 2903 मीटर से 2730 मीटर नीचे आ गई। इस विस्फोट से हिला देने वाली गगनभेदी तरंगें आकाश में सैकड़ों किलोमीटर ऊंचाई तक फैल गई। वायु प्रवाह के साथ-साथ ज्वालामुखी का मलबा चार हजार किलोमीटर क्षेत्र में फैल गया और लगभग 1.3 सेंटीमीटर मोटी मलबे की परत 800 मीटर दूर तक के क्षेत्र में जम गई। अमेरिका के भूविज्ञानियों ने ज्वालामुखी के इस विस्फोट की क्षमता का वर्णन करते हुए बताया कि यह विस्फोट द्वितीय विश्वयुद्ध में अमेरिकन वायु सेना द्वारा हिरोशिमा पर गिराए परमाणु बम से लगभग ढाई हजार गुना अधिक क्षमतावान था।

आज विश्व में लगभग 699 सक्रिय ज्वालामुखी हैं। ज्वालामुखीय सक्रियता अक्सर मानव जाति के लिए हानिप्रद सिद्ध होती है। सेंट हैलेस पर्वत के होने वाले विस्फोट ने वहां एक बड़े वन प्रदेश को आग की चपेट में ले लिया जिसका परिणाम यह हुआ कि 390 वर्ग किलोमीटर तक के क्षेत्र के सभी वृक्ष जलकर राख हो गए। लगभग 60 हजार एकड़ से अधिक में फैले वांशिगटन राज्य के सेब के वृक्ष मलबे से ढक गए। इसका परिणाम यह हुआ कि अगणित सेब नष्ट हो गए और राज्य के फल उद्योग को तीन करोड़ डालर का नुकसान हुआ। बर्फ से ढकी पर्वतीय चोटियों के पिघलने से जो द्रव बहा वह ज्वालामखी के आसपास आकर जम गया।

काले बादलों ने आकाश ढक दिया और वांशिगटन और इसके पड़ौसी राज्य इसकी चपेट में आ गए। स्थिति यह हो गई कि वहां के लोग कारों की हैडलाइट जलाकर ही कार चला सकते थे। हाइवे पर ज्वालामुखी का मलबा पांच से सात सेंटीमीटर मोटाई में कारपेट की तरह फैल गया और इस तरह इस विस्फोट से लगभग 1.6 अरब डालर की हानि का अनुमान लगाया गया। इस स्थल का निरीक्षण करते हुए राष्ट्रपति कार्टर ने कहा कि संयुक्त राज्य के इतिहास में यह विस्फोट एक भयानक अभिशाप के रूप में घटा।

दूसरी ओर ज्वालामुखी सक्रियता मनुष्य को अगणित संसाधन भी देती है। सामान्यतया इसमें भू ऊष्मीय संसाधन होते हैं जो ज्वालामुखी के आसपास पाए जा सकते हैं। ज्वालामुखीय सक्रियता से जो खनिज प्राप्त होते हैं उनमें गंधक, आर्सेनिक, बोरोन और रेडियोधर्मी तत्व भी होते हैं जो ऊष्मीय प्रभाव में घुल जाते हैं। और इस तरह वर्षा का जल अनेक बीमारियों को दूर करने की क्षमता वाला हो जाता है। जल में मिश्रित गंधक का निष्क्रमण किया जा सकता है। जापान और मैक्सिकों में बहुत से ऐसे ज्वालामुखी हैं जो विश्व में गंधक संसाधन के रूप में उल्लेखनीय हैं। लावे के ढेर को भवन निर्माण के पदार्थ के रूप में तथा राख और मलबे को पृथ्वी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने वाले पदार्थ के रूप में देखा जा सकता है। इंडोनेशिया में विश्व के सर्वाधिक ज्वालामुखी हैं। इंडोनेशिया के लोग ज्वालामुखी के मलबे से बनी उर्वरक भूमि पर खेती करते हैं।

2. भूकंप

भूकंप एक प्राकृतिक क्रिया है किन्तु अत्यन्त उग्र भूकंप अक्सर बहुत बड़ी हानि का कारण बन जाते हैं। विश्व में प्रत्येक वर्ष लगभग पचास लाख भूकंप हो जाते हैं, इनमें पचास हजार के आसपास को महसूस किया जा सकता है और औसतन सिर्फ अठारह अत्यन्त प्रभावकारी भूकंप ही गंभीर हानि का कारण बनते हैं और ये पर्वतीय अथवा महासागरीय क्षेत्रों के पास घटित होते हैं जहां आबादी कम होती है। विश्व में ऐसे भयानक

जन-धन की हानि करने वाले भूकंप तीन या पांच के औसत से हर वर्ष होते हैं।

भूकंप होने के भिन्न-भिन्न कारणों के आधार पर हम इनको तीन कोटियों में विभक्त कर सकते हैं—विवर्तनिक, ज्वालामुखीय और भूदाबीय।

जब ज्वालामुखी विस्फोट की प्रक्रिया में होता है तो ऐसे में शैलमूल (मैग्मा) के निष्कासन से सतह की गति में ठहराव आ जाता है और ज्वालामुखीय भूकंप हो जाता है।

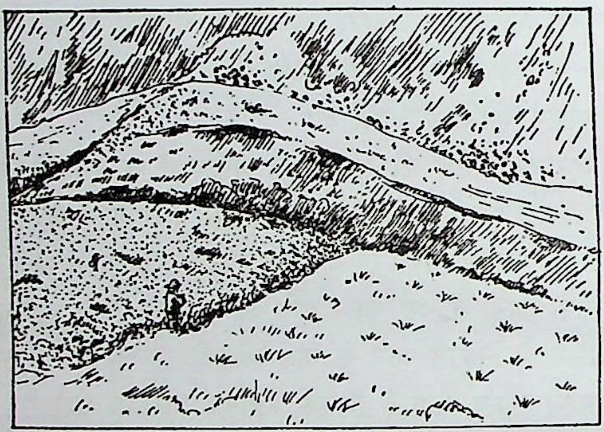
जब चूना-पत्थर की सतह नीचे जमीन में भू जल में घुस जाती है, ऐसे में एक गहरी घाटी बन जाती है। इस घाटी की छत पर यदि भारी चट्टानों की पर्त नहीं होती तो यह एक गुफा के आकार में होती है। अक्सर उन पुरानी खानों में यह भूकंप होने की संभावना बहुत अधिक रहती है जो खनिज के निकाले जाने के बाद खोखली रह जाती हैं। इन स्थितियों में भूदाबीय भूकंप होता है जिसके भयानक परिणाम होते हैं।

ये दोनों ही प्रकार के भूकंप कभी-कभी होते हैं। इनकी प्रभाव क्षमता का क्षेत्र भी बहुत सीमित होता है और यह तमाम भूकंपों का केवल दस प्रतिशत होते हैं।

भूपटलीय गतिविधियों से ही विवर्तनिक भूकंप होता है। विवर्तनिक भूकंप बहुत शीघ्र होता है। इसका प्रभाव क्षेत्र व्यापक होता है और मानव जाति पर इसका बड़ा भयावह प्रभाव पड़ता है। विवर्तनिक भूकंप बड़े ही विनाशकारी होते हैं। विश्व के कई क्षेत्रों में विवर्तनिक भूकंप आए हैं। उनकी विनाशलीला के साक्ष्य कई स्थानों पर विद्यमान हैं। हम यहां विवर्तनिक भूकंप पर चर्चा करेंगे और इससे होने वाले खतरों से सुरक्षा के उपायों पर विचार करेंगे।

पृथ्वी के भूगर्भ में असीमित ऊर्जा संरक्षित है जो भूपटल को परिवर्तित करने के लिए एक बल के रूप में काम आती है। अगर यही बल भूसतह के कमजोर भाग को प्रभावित करे, जहां चट्टानें परस्पर खड़ी न रह सकें तो ऐसे में असीमित दरारें या गड्ढे पड़ जाते हैं और इस प्रक्रिया

में संरक्षित ऊर्जा मुक्त होती है। संस्तर में आई दरारें या गड्ढों के कारण भूमि में हलचल होने लगती है। पृथ्वी से तरंगें फूटने लगती हैं। और जैसे ही ये तरंगें एक स्थान से किसी दूसरे स्थान की ओर गुजरती हैं तो भूकंप हो जाता है। (चित्र-25)



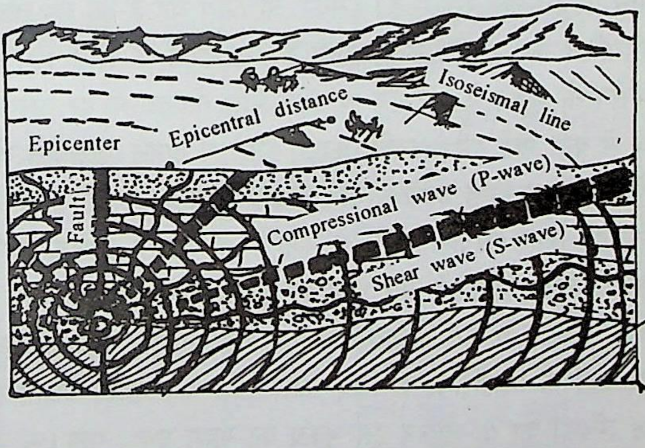
चित्र-25 : 8-9 मीटर भू कटाव 1931 में जिन जिआंग प्रदेश के फ्युआन में पर्वतों को हिला गया।

पृथ्वी के भीतर का वह स्थल जहां भूकंप होता है, फोकस कहलाता है और सतह पर ऊर्ध्वाधर और फोकस के विपरीत स्थल उत्केन्द्र कहलाता है। फोकस और उत्केन्द्र के बीच की दूरी फोकल गहराई कहलाती है। उत्केन्द्र की ओर कंपन बहुत प्रबल होते हैं और जैसे-जैसे ये उत्केन्द्र से दूर होते जाते हैं, कंपन कमजोर होते जाते हैं। उत्केन्द्र से सतह के प्रभावित स्थल तक के बीच की दूरी उत्केन्द्रक दूरी कहलाती है। इस विध्वंस की मात्रा सामान्यतया असमान होती है। हालांकि मुख्य स्थल पर उत्केन्द्रित दूरी समान होती है।

चित्र-26 में दर्शाए गए स्थलों पर खींची गईं रेखाएं समान त्वरा की हैं। अधिकांश भूकंपों की फोकल गहराई 70 किलोमीटर से कम होती है जबकि वे भूकंप जो भयानक परिणाम वाले होते हैं अक्सर दस से बीस

किलोमीटर तक की गहराई के होते हैं। सर्वाधिक फोकल दूरी 720 किलोमीटर दूर तक हो सकती है।

हम भूकंप की तीव्रता को भूकंप की प्रभाव क्षमता को मापने के लिए प्रयोग करते हैं। सर्वाधिक तीव्रता वाला भूकंप चिलिअन भूकंप कहा जा सकता है जो 20 मई 1960 को लगभग 8.9 तीव्रता वाला मापा गया। सामान्यतया 2 तीव्रता वाला भूकंप बहुत छोटा होता है और जिसे मुश्किल से ही पहचाना जाता है। 3 से 5 तीव्रता वाले भूकंप लोगों द्वारा अनुभव भी किए जा सकते हैं और इन्हें अनुभुक्त भूकंप कहते हैं। लेकिन 5 से अधिक तीव्रता वाले भूकंप विध्वंसक होते हैं और ये व्यापक विनाश का कारण बनते हैं। स्थानीय भूकंप की माप और उसकी भवनों के ध्वंस की मात्रा उसकी तीव्रता पैमाने पर संकेतित होती है । उसमें बारह ग्रेड होते हैं।



चित्र-26 : उत्केन्द्र और आइसो सीसमल रेखाएं

भूकंप की तीव्रता मापने का यह पैमाना रिक्टर स्केल के नाम से जाना जाता है।

विस्तार और तीव्रता में काफी अंतर होता है। प्रत्येक भूकंप का एक विस्तार होता है लेकिन उसकी तीव्रता गोलाई की पहुंच के स्तर पर भिन्न

होती है। यह तीव्रता भिन्न उत्केन्द्रित दूरियों, भूगर्भीय संरचना तथा तरंगों की स्थितियों के फैलाव के कारण भिन्न होती है। भूकंप की तीव्रता उत्केन्द्रित क्षेत्र में सर्वाधिक होती है तथा उत्केन्द्रित क्षेत्र से दूरी के साथ-साथ उसकी तीव्रता का ह्रास होता जाता है। भूकंप की स्थिति एक बम के विस्फोट के समान होती है। जैसे जितना बम के पास होंगे उतना ही विध्वंस अधिक होगा। यदि बम में डाइनामाइट की मात्रा को विस्तार के रूप में व्याख्यायित किया जाए तो तीव्रता को बम से भिन्न दूरियों पर, बम के विस्फोट के परिणामस्वरूप उसके द्वारा होने वाले विध्वंस के स्तर द्वारा समझा जा सकता है।

भूगर्भीय संरचना की विविधता के कारण मिट्टी और चट्टानों की मूल्यवत्ता और भवनों की कंपनसह्य क्षमता के रूप में तीव्रता काफी बड़े पैमाने पर भिन्नता रखती है। इसका अभिप्राय यह है कि यह तीव्रता काफी अनियमित रूप से विभाजित होती है। उदाहरण के लिए 1976 में आये तांगसेंग के भूकंप में यूटियान प्रान्त के पास तीव्रता की दर उसके समीपस्थ क्षेत्र में कम पाई गई। जबकि काइयू जिले में अपने आसपास के क्षेत्र की अपेक्षा तीव्रता बहुत अधिक थी। तीव्रता फोकल गहराई से सीधे संबंधित होती है। अगर फोकस सतह के पास है तो तीव्रता अधिक होगी भले ही उसका विस्तार कम हो और प्रभावित क्षेत्र सीमित हो। 29 फरवरी 1960 को एटलांटिक से लगे मोरक्को के एक शहर में एक भयानक भूकंप आया और वहां के निवासियों के लिए काल रात्रि बन गया। यद्यपि यह केवल 5.8 तीव्रता का था लेकिन इस भूकंप का गहरा प्रभाव पड़ा। न केवल कुछ सैकिंड में सारे शहर की इमारतें गिर गईं बल्कि रौरव दृश्य उपस्थित हो गया। इसकी फोकल गहराई मुश्किल से 3 से 5 किलोमीटर थी, फिर ऐसा क्यों हुआ ? मान लीजिएगा, फोकल गहराई 10 से 30 किलोमीटर है तो विस्तार, फोकल तीव्रता, विध्वंस का स्तर और मुक्त होने वाली ऊर्जा आदि निम्न सारणी के अनुरूप होंगे–

भूकंप तीव्रता के अनुरूप मुक्त ऊर्जा तथा विनाश सारणी

उत्केंद्रित तीव्रता	क्षमता	गुणात्मक वर्णन	मुक्त ऊर्जा	उत्केन्द्र पर प्रभाव एवं विनाश	भूकंप संख्या (प्रतिवर्ष)
1	1.9	नगण्य	एक पौंड टी.एन.टी के समान	उपकरणों द्वारा परिमापित	700000 2M से कम
2	2.5	कमजोर		लोगों द्वारा महसूस किया गया लेकिन सम्पत्ति की हानि अपेक्षाकृत कम हुई	300000 2से2.9M
3	3.1	हल्का	600कि.वा. प्रति घण्टा की विद्युत क्षमता	सोते हुए लोगों द्वारा महसूसा गया ट्रक गुजरने जैसे कंपन के समान खड़ी कारें हिल उठीं	49000 3-3.9M
4	3.7	मध्यम		घर के भीतर लगा जैसे भारी ट्रक गुजर रहे हों, कुछ सोते लोग जाग पड़े। खिड़कियों के पट भड़भड़ा उठे, खड़ी कारें हिलने लगीं, घूमते हुए लोग गिर पड़े	

उत्केंद्रित तीव्रता	क्षमता	गुणात्मक वर्णन	मुक्त ऊर्जा	उत्केन्द्र पर प्रभाव एवं विनाश	भूकंप संख्या (प्रतिवर्ष)
5	4.3	कम प्रबल		अधिकांश लोगों द्वारा अनुभव किया गया, अनेक सोते हुए लोग जाग पड़े। दरवाजे, खिड़कियां और घर के फर्नीचर बज उठे, कांच का सामान प्लेट आदि टूट गए, घड़ियां रुक गईं, तालाब में बुलबुले उठ गए, घरेलू जानवर भी घबरा उठे	6200 4-4.9M
6	4.9	प्रबल	20000 टी.एन.टी. क्षमता के परमाणु बम के समान	सभी के द्वारा अनुभव, अधिकांश आतंकित, चिमनियां गिर गईं, फर्नीचर लुढ़क गए, पानी हिलोरने लगा, मजबूत वृक्ष तक हिल गए, घरेलू जानवर भाग खड़े हुए	

उत्केंद्रित तीव्रता	क्षमता	गुणात्मक वर्णन	मुक्त ऊर्जा	उत्केन्द्र पर प्रभाव एवं विनाश	भूकंप संख्या (प्रतिवर्ष)
7	5.5	बहुत प्रबल		अधिकांश भाग खड़े हुए, दरवाजे हिल गए, कमजोर इमारतें ढह गईं, मोटर सवारी चालकों ने भी महसूस किया, सतह पर छोटी छोटी दरारें पड़ गईं।	800 5-5.9M
8	6.1	विनाशक	1Mt (टी.एन.टी) क्षमता के हाइड्रोजन बम के समान	सामान्य उत्पीड़नदायी, सभी भाग खड़े हुए, सन्तुलन बनाए रखने में कठिनाई हुई, साधन सामग्री की क्षति, भवन टूट पड़े, प्राचीन स्तूप ढह गए, भारी फर्नीचर तक गिर गया, भूमिगत पाइप लाइन तक क्षतिग्रस्त हो गई, पाइप फट गए, दरारों से गारा और कीचड़ ऊपर आ गया	120 6-6.9M

उत्केंद्रित तीव्रता	क्षमता	गुणात्मक वर्णन	मुक्त ऊर्जा	उत्केन्द्र पर प्रभाव एवं विनाश	भूकंप संख्या (प्रतिवर्ष)
9	6.7	सर्वनाशी विध्वंसक		गंभीर दुष्परिणाम, अच्छी भली इमारतें तक ढह गईं, नींवें तक उखड़ गईं, भूमिगत पाइप फट गए। जमीन में 10 से.मी. तक चौड़ी दरारें पड़ गईं, सब जगह त्राहि-त्राहि मच गई	
10	7.3	अनर्थकारी		गंभीर विभीषिका देने वाला, कुछ ही पर्याप्त मजबूत भवन बचे, नीवें ढह गईं, भूमि में दरारें पड़ गईं जो कई किलोमीटर लम्बी थीं, जमीन धसक गई, जगह जगह मार्ग अवरोधक झीलें बन गईं	18 7-7.9M

उत्केंद्रित तीव्रता	क्षमता	गुणात्मक वर्णन	मुक्त ऊर्जा	उत्केन्द्र पर प्रभाव एवं विनाश	भूकंप संख्या (प्रतिवर्ष)
11	7.9	गंभीर अनर्थकारी		बहुत कम भवन ही बच सके, गहरी दरारें पड़ गईं, काफी भूमि दरक गई, धंस गई, भूमिगत पाइप पूरी तरह विनष्ट, जान माल की गंभीर हानि	
12	8.5	भयंकर अनर्थ कारी प्रलयंकारी	1 mt. टी.एन.टी. क्षमता के 60000 हाइड्रोजन बम के समान	लगभग सम्पूर्ण विनाश, चीजें हवा में उछल गईं, जमीन का पानी बाहर आकर फैल गया, प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया, धरती की दिशा और तल दोनों ही गड़बड़ा गए	कुछ वर्षों में एक -8.9M

प्रत्येक भूकंप अपनी रचना, विकास और असफलताओं से गुजरता है। सामान्यतया किसी भी बड़े भूकंप से पहले पूर्व झटकों की एक लम्बी शृंखला होती है इन्हीं के प्रबल से प्रबलतर होने पर बड़ा भूकंप होता है। और हर बड़े भूकंप के बाद उसके प्रभाव से बाद के झटके चलते रहते हैं।

प्रबल भूकंप के दुष्परिणामस्वरूप जनहानि और सम्पत्ति हानि के

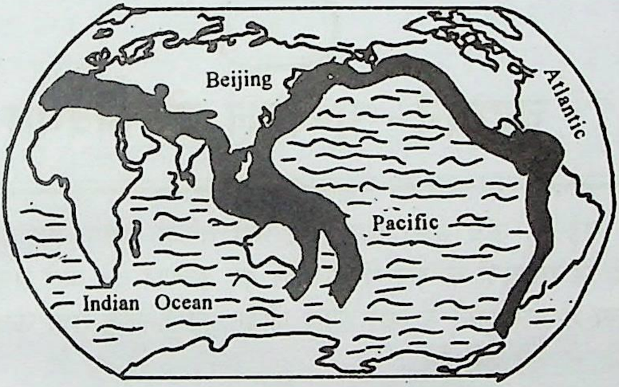
साथ-साथ राष्ट्रीय आर्थिक ढांचा भी चरमरा जाता है। अगर हम यह अनुमान लगा सकें कि कब, कहां और कितनी क्षमता का भूकंप होने वाला है, तो उससे होने वाली सम्भावित हानि की दर को कम से कम कर पाने के आवश्यक उपाय कर सकते हैं।

भूकंप की त्रासदी से त्रस्त हो वैज्ञानिकों ने भूकंप की पूर्व जानकारी पाने के लिए शोधकार्य आरंभ किए और पाया कि भूकंप के लक्षण बताने वाले संकेतों के आधार पर भूकंप का अनुमान लगाया जा सकता है। हालांकि भूकंप प्रकृति की एक आकस्मिक घटना है फिर भी किसी भी प्रबल भूकंप के होने से पहले गुणात्मक परिवर्तन से भी पहले परिमाणात्मक परिवर्तन होने लगते हैं। जब दबाव बढ़ने लगता है और भूकंप की संभावना होने लगती है तो ऐसे में भौतिक, रासायनिक, जीव वैज्ञानिक, एवं पदार्थ वैज्ञानिक परिवर्तन की एक श्रेणीबद्ध शृंखला देखी जा सकती है। भूकंप से पहले होने वाले परिवर्तन भूकम्पीय संकेत से सम्बन्धित होते हैं। समय रहते इन भूकम्पीय संकेतों के अध्ययन और प्रेक्षण से यह पता लगाया जा सकता है कि कोई भूकंप कैसे होता है ? यानि स्थिति, प्रक्रिया और इसके परिवर्तन के नियम के ज्ञान से यह संभव हो सकता है कि कब और कहां भूकंप होने जा रहा है और वह कितनी क्षमता एवं तीव्रता का होगा।

भूकंप के बारे में अनुमान लगाना ऐसा कार्य है जिसमें सामान्य जन भी भाग लें सकते हैं। इसमें छोटे झटकों का प्रेक्षण स्थलाकृति के असामान्य परिव्रर्तनों का सर्वेक्षण, भूमिगत जल की सारणी, स्थलमण्डली धारा, स्थलमण्डलीय चुम्बकीय बल, तापक्रम दबाव और गुरुत्व, यहां तक कि जीव जन्तुओं का असामान्य आचरण आदि पर ध्यान देने से यह अनुमान सरल हो जाता है। उपरिवर्णित स्थिति-परिस्थितियों के प्रेक्षण सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करना चाहिए ताकि इन सभी पक्षों पर दृष्टिपात करते हुए एक नियम बना सकें जो भूकंप को परिचालित करता है और भूकंप के बारे में ठीक प्रकार से भविष्यवाणी और अनुमान कर सके।

3. भूकंप एवं ज्वालामुखी का विभाजन

भूकंप एवं ज्वालामुखी का भौगोलिक विभाजन नियमित होता है। दोनों ही आधुनिक भूपटलीय गतिविधियों के सक्रिय स्थलों पर पनपते हैं। अतः भूकंप और ज्वालामुखी के विभाजन में प्रायः संयोग ही रहता है।



चित्र-27 : विश्व में भूकंपों का विभाजन

अधिकांश भूकंपों और ज्वालामुखियों को विश्व में दो मुख्य क्षेत्रों में चिह्नित किया गया है। प्रथम परिप्रशान्त भूकम्पीय कटिबन्ध प्रदेश हैं—इसमें जापान, ताइवान, फिलीपीन, इण्डोनेशिया, न्यूजीलैण्ड तथा दक्षिणी एवं उत्तरी अमरीका का तटीय क्षेत्र आता है। दूसरा हिमालय-भूमध्यरेखीय कटिबन्ध (पर्वत शिखरीय कटिबन्ध) जो बर्मा, हेंग दुआन शेन पर्वतमाला, हिमालय, पामीर का पठारी प्रदेश, मध्य एशिया भूमध्यीय और पड़ौसी क्षेत्र से जुड़ा है। (चित्र-27) पट्टिका विवर्तन की दृष्टि से ये दोनों कटिबंध पट्टिकाओं के मिलन स्थल पर अवस्थित हैं जहां आधुनिक भूपटलीय गतिविधियां काफी अधिक सक्रिय हैं और अधिकांश भूकंपों और ज्वालामुखियों को संकेद्रित करते हैं। (विश्व के ज्वालामुखियों एवं भूकंपों का लगभग 95%)।

4

चट्टानें—भू-पटल के अवयव

बड़े-बड़े ऊंचे पर्वत शिखर ही नहीं बल्कि विषम और विरल पत्थर आदि भी चट्टानों के रूप में भू-पटल को आकार देने वाले प्रमुख अवयव के रूप में माने जाते हैं और हमारे जीवन की दैनंदिन तथा उत्पादक कार्य पद्धति से जुड़े हुए हैं।

बहरहाल पृथ्वी पर पाई जाने वाली ये चट्टानें किस चीज की बनी हुई होती हैं ? यह जानने का विषय है।

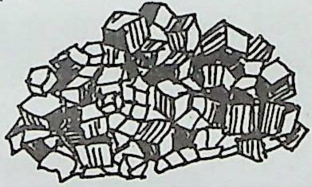
1. तत्व, खनिज एवं चट्टान

रासायनिक तत्व चट्टानों के मुख्य रचना अवयव हैं। लगभग सौ से अधिक ज्ञात रासायनिक तत्वों में भूसतह के बनाने में जिन प्रमुख तत्वों का योगदान होता है उनमें ऑक्सीजन, सिलिकॉन, एल्यूमीनियम, लोह, कैल्शियम, सोडियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, टाइटेनियम और हाइड्रोजन आदि की गणना की जाती है। भूपटल के सम्पूर्ण भार का लगभग 99.35 प्रतिशत ये तत्व ही होते हैं।

भू-पटल में प्रमुख तत्वों की उपस्थिति का प्रतिशत

आक्सीजन	46	मैग्नीशियम	2.8
सिलिकॉन	29	सोडियम	2.3
एल्यूमीनियम	8.3	पोटैशियम	1.7
लोह	5.8	टाइटेनियम	0.64
कैल्शियम	5.2	हाइड्रोजन	0.14

अमेरिकी भूविज्ञानी क्लार्क ने भू-पटल में सर्वप्रथम 50 तत्वों की प्रतिशत मात्रा का परिमापन किया है। और इसीलिए भू-पटल में प्रत्येक तत्व की प्रतिशत मात्रा को क्लार्क वैल्यू के नाम से परिभाषित किया गया। इतने पर भी भू-पटल में तत्वों का विभाजन समान रूप से नहीं होता क्योंकि इनकी आनुपातिक मात्रा इनके रासायनिक गुणों पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए टाइटेनियम की क्लार्क वैल्यू पर्याप्त ऊंची होती है लेकिन भूपटल में टाइटेनियम समृद्ध अयस्क बहुत विरल ही मिल पाता है जबकि इसके विपरीत तांबे की क्लार्क वैल्यू केवल .0063 ही होती है किन्तु इसके अयस्क काफी सुगमता से और समृद्ध रूप में मिलते हैं। गेलियम की क्लार्क वैल्यू .0018 और क्रोमियम की .0012 होती है फिर भी गेलियम अयस्क रूप में नहीं मिल पाता जबकि क्रोमियम अयस्क बड़े पैमाने पर मिल जाता है।



चित्र-29 : रॉक साल्ट



चित्र-30 : जिप्सम

खनिजों को सामान्यतया प्राकृतिक रूप से प्राप्त होने वाले पदार्थ के रूप में माना जाता है। ये आमतौर पर ठोस और अकार्बनिक होते हैं जिनके परमाणु और आयन (विद्युत आवेशित कण) त्रिआयामी आकार की समान व्यवस्था में बद्ध इन खनिजों को भौतिक गुणों एवं रासायनिक संघटन के कारण एक लाक्षणिकता प्रदान करते हैं। सामान्य लवण जिसका एक चम्मच हमारे नित्य के भोजन में प्रयोग में लाया जाता है, एक खनिज ही है जो सोडियम और क्लोरीन तत्वों के संयोग से मिलकर बना सफेद या रंगहीन पदार्थ है। (चित्र-29) जिप्सम एक महत्वपूर्ण भोज्य पदार्थ बनाने में काम आता है। यह पारदर्शक या सफेद रेशेदार रचना का होता है और कैल्शियम, गंधक, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन तत्वों के योग से बनता है। (चित्र -30) धात्विक चमक वाला पदार्थ ग्रेफाइट काले सलेटी रंग का होता है जो केवल कार्बन से बनता है। यह कागज पर निशान बना देता है इसलिए इसे पेंसिल

के मसाले के रूप में प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि खनिज या तो कई तत्वों के संयोग से या एक ही तत्व के परमाणुओं से मिलकर बनते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि खनिजों में जो भिन्न रासायनिक संगठन पाया जाता है उससे इनके आकार, रचना और भौतिक तथा रासायनिक गुणों में भिन्नता आ जाती है जो इनके रंग, पारदर्शनीयता, कठोरता तथा बाहरी दीप्ति में भिन्नता का आधार बनती है और इसके कारण ही हम किसी खनिज की पहचान कर पाते हैं।

यद्यपि प्रकृति में पाए जाने वाले भिन्न पदार्थों की अब तक की खोज के आधार पर 3300 प्रकार के खनिजों की खोज की जा चुकी है। और हर वर्ष लगभग 50 प्रकार के खनिज की दर से उनमें वृद्धि भी हो रही है लेकिन सामान्य खनिजों की संख्या लगभग कुछ सौ ही है।

भूपटल में कोई तत्व अपने मूल तात्विक रूप में विरल ही मिल पाता है। सामान्यतः दो या तीन तत्व समान प्रकार से आबद्ध अथवा निश्चित अनुपात में मिलकर ही भिन्न चट्टानों के रूप में पाए जाते हैं। अगर आप ग्रेनाइट का एक टुकड़ा अपने हाथ में लें तो पहली ही दृष्टि में आपको लगेगा कि यह एक सफेद, चमकदार, सलेटी रंग का एक चिकना पत्थर है। ध्यान से परीक्षण करने पर आप पायेंगे कि इसमें तीन खनिज मिले हुए हैं—फैल्डस्पार, क्वार्ट्ज और माइका। बरवा पत्थर जो चाकू की धार तेज करने के काम आता है, वह मुख्य रूप से क्वार्ट्ज और फैल्डस्पार से मिलकर बना होता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की चट्टानों का निरीक्षण-परीक्षण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कोई चट्टान भिन्न भूगर्भीय स्थितियों में किसी एक अथवा भिन्न खनिजों के एक निश्चित रूप में मिलने से बनती है।

चट्टान की निर्मिति के लिए अत्यधिक सामान्य खनिजों में फैल्डस्पार, क्वार्ट्ज, माइका, कैल्साइट, ऑगाइट आदि होते हैं और इन्हें चट्टान निर्माणक खनिज कहा जाता है। इनमें अधिकांश सिलिकेट होते हैं। इसके बाद ऑक्साइड और कार्बोनेट लवण होते हैं। भिन्न-भिन्न चट्टानों में ढलने के

बावजूद प्रत्येक खनिज अपने विशिष्ट गुण झलकाता है। उदाहरण के लिए क्वार्ट्ज खनिज, चाहे वह ग्रेनाइट में हो अथवा बरवा पत्थर में हो, सफेद या रंगहीन कणों और काचाभ दीप्ति का आभास देता है। अतः भिन्न-भिन्न चट्टानों की पहचान में खनिजों की पहचान मुख्य आधार होता है।

2. विभिन्न प्रकार की चट्टानें

चट्टान की निर्मिति और उद्भव की भिन्नता के आधार पर चट्टानों का तीन भागों में वर्गीकरण किया जाता है—आग्नेय चट्टानें, अवसादी (तलछटी) चट्टानें तथा रूपान्तरित चट्टानें।

(क) आग्नेय चट्टानें

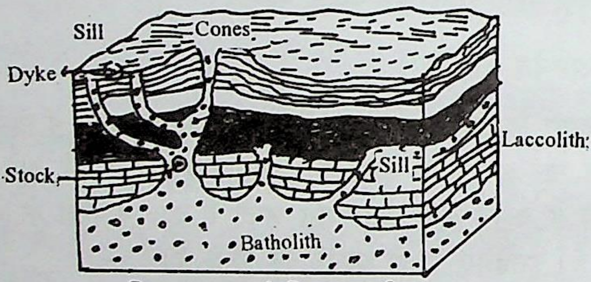
हमारे भूपटल में आग्नेय चट्टानें ही सर्वाधिक मात्रा में पाई जाती हैं। ये कुल भार का 65% होती है। प्रगलित चट्टानों के ठंडे होने पर जमने से बनी ये चट्टानें कुछ भीतर धंस जाती हैं कुछ भू-पटल के बाहर उभर आती हैं। इसीलिए ये दो प्रकार की होती हैं।

(1) अन्तर्स्थित चट्टानें

(2) बहिर्स्थित चट्टानें

जैसे-जैसे पृथ्वी की सतह के नीचे की ओर जाते हैं भू-पटल का ताप 1° से. प्रति 33 मीटर की गहराई पर बढ़ता रहता है। पर्याप्त गहराई तक यह स्थिर नहीं हो पाता। खोजों से पता लगाया गया है कि 'मोहो' के पास यह ताप 40° से. से 1000° से. तक होता है। लिथोस्फीयर और एस्थेनोस्फीयर की सीमा पर (लगभग 60 किमी. गहराई पर) तापक्रम 500° से. से 1100° से. तक होता है जबकि एस्थेनो परिक्षेत्र में यह ताप 2000° से. होता है। हालांकि इतने उच्च ताप पर कैसी भी कठोर चट्टान पिघल सकती है पर ऐसा होता नहीं है चट्टान पूरी तरह पिघलती नहीं है बल्कि सघन मैग्मा के रूप में हो जाती है और ऊपरी सतह पर लगभग 5 लाख वायुमण्डलीय दाब बन जाता है। इसकी रासायनिक संरचना जटिल होती है। इसमें अस्थिर गैसों की मात्रा बहुत अधिक होती है।

यह मैग्मा उच्च ताप एवं दाब पर काफी गतिशील और सक्रिय हो जाता है। यह मैग्मा ऊपरी चट्टानों की दरारों में भरने लगता है जहां ताप और दाब में उल्लेखनीय गिरावट आने के कारण यह धीरे-धीरे भिन्नता ग्रहण करता हुआ कणों का रूप ले लेता है और खनिज की शक्ल में बदल जाता है। ठंडा होकर यह मैग्मा अंतर्स्थित चट्टान की शक्ल प्राप्त कर लेता है। जैसे ओलिविनफैल्स, डायोराइट, ग्रेनाइट आदि। भूसतह में प्रवेश करने के बाद यह मैग्मा अपने भिन्न-भिन्न आकार वाली रचनाओं बाथोलिथ, लेकोलिथ, डाइक और सिल आदि में भिन्न आकार ग्रहण कर लेता है। (चित्र-31)



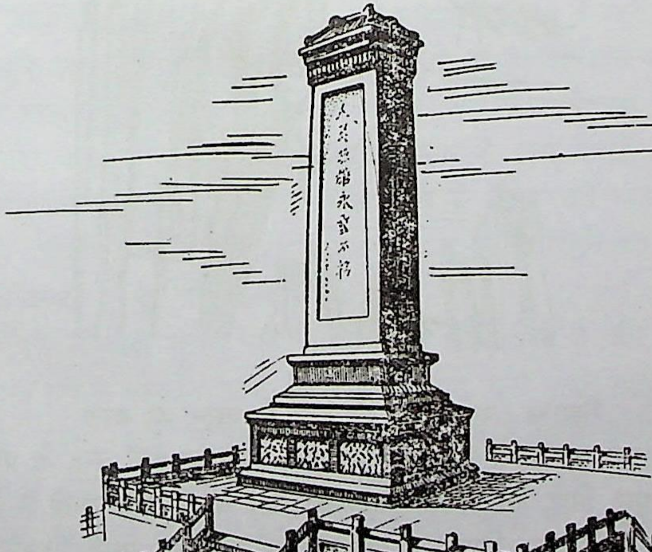
चित्र-31 : आंतरिक पदार्थ

जब कोई ज्वालामुखी फटता है तो उसमें से लावा फूटकर बाहर निकलने लगता है और ठंडा होने पर यह बहिर्स्थित चट्टानों के रूप में जमा हो जाता है। जैसे बेसाल्ट, एन्डेसाइट, लिपेराइट आदि।

अधिकांश आग्नेय चट्टानें केलासीय होती हैं। सामान्यतया अन्तर्स्थित चट्टानें कोर्स ग्रेंड चट्टानें होती है। ये धीरे-धीरे ठंडी होने पर बनती हैं जबकि बहिर्स्थित चट्टानें या तो बहुत बारीक कणों वाली होती हैं या चिकनी होती हैं जो एकदम ठंडे होने पर बनती हैं या फिर ये भूसतह के समीप होती हैं। (क्योंकि एकदम ठंडा होने पर बड़े केलास बनने का समय ही नहीं होता) इसके साथ-साथ बहिर्स्थित चट्टानों में धुएं के बादल बन जाते हैं, इसमें अस्थिर गैसें बाहर निकल जाती है। लावा बहने से चट्टान की पर्तें बन जाती हैं।

सभी आग्नेय चट्टानों में ग्रेनाइट की मात्रा सर्वाधिक होती है। इसे 'माशी' कहा जाता है। यानि 'छुटपुट पत्थर'। यह नाम बहुप्रचलित है क्योंकि इसके कण आंखों से देखे जा सकते हैं। ग्रेनाइट में क्वार्ट्ज, फैल्डस्पार

तथा अभ्रक नामक तीन प्रमुख खनिज पाए जाते हैं। क्वार्ट्ज सामान्य तथा रंगहीन या सफेद रंग के होते हैं। सामान्यतया ये पारदर्शी होते हैं। फैल्डस्पार मांस की तरह सफेद या सलेटी रंग का होता है। और इसके केलास आयताकार होते हैं। अभ्रक काला या सफेद रंग का पतली तन्य पत्रों वाला होता है। ग्रेनाइट में अन्य खनिज भी होते हैं। इनमें हॉर्न ब्लैण्डी तथा ऑगाइट आते हैं। जब ये पदार्थ भिन्न प्रतिशतता में पाये जाते हैं ग्रेनाइट का रंग भी भिन्न हो जाता है जैसे हल्का सलेटी, गुलाबी, हल्का पीला, सफेद आदि। ग्रेनाइट बहुत कठोर होता है और इसका दाब दो हजार किलो प्रति वर्ग सेंटीमीटर भार के बराबर होता है। इस कठोरता के कारण ही यह बहुत अच्छा इमारती पदार्थ माना जाता है। इसीलिए बड़े-बड़े पुल, बांध, सड़कें बनाने और दीवारों पर पलस्तर के रूप में इसका उपयोग होता है। कई पुलों के निर्माण में ग्रेनाइट का प्रयोग किया गया है। पेकिंग का 'थ्येन' आन मेन चौक' भी इसी का बना है। कई जनप्रिय नेताओं और राजाओं के कीर्तिस्तंभों का निर्माण इसी प्रत्थर के प्रयोग से हुआ है। प्राचीन काल की कई मूर्तियों और भवनों में भी इसका व्यापक प्रयोग हुआ है।

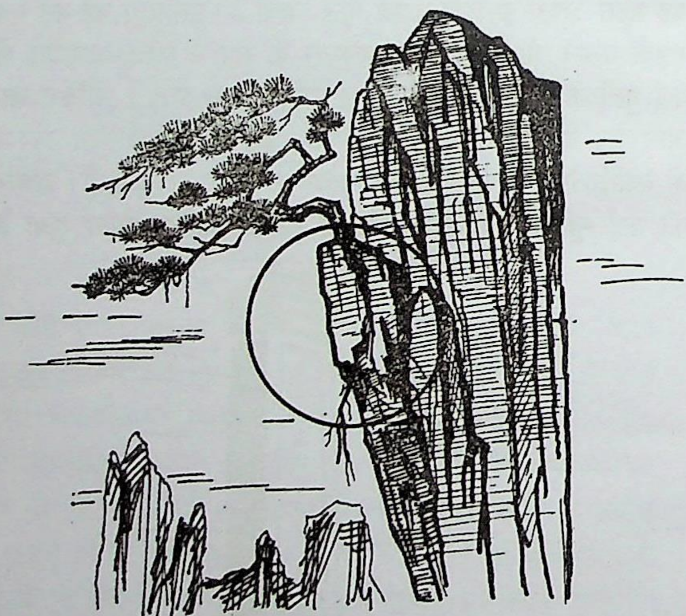


चित्र-32 : जननायकों के कीर्तिस्तंभ

(ख) अवसादी चट्टानें

हालांकि कुल भू-पटल के भार में ये चट्टानें केवल आठ प्रतिशत होती हैं लेकिन महाद्वीपीय सतह पर ये लगभग 75% क्षेत्र घेरे रहती हैं और समुद्री किनारों पर बहुत दूर-दूर तक फैली होती हैं।

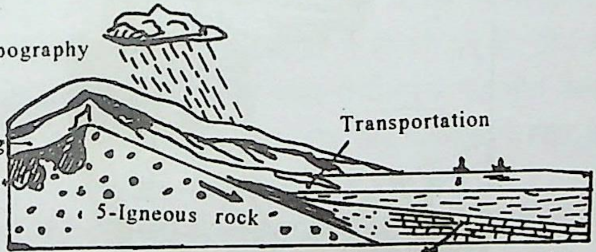
ये अवसादी चट्टानें बहिर्जात बल के फलस्वरूप बनती हैं। सतह के ऊपरी तरफ उभरी चट्टानें गर्मी, हवा, वर्षा अथवा बर्फ जमने के कारण बदले मौसम के फलस्वरूप कचरे, रेत, मिट्टी या दूसरे पदार्थों में टूटकर नष्ट हो जाती हैं। इसमें वृक्षों की जड़ें भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।



चित्र-33 : वनस्पतियों की जड़ों से चट्टान का क्षरण

इसके बाद पानी की तेज धार, हवा, झरने या इसी तरह के प्रभाव से ये धूल, मिट्टी, रेत निचली सतह की ओर बहती चली जाती है और जहां उपयुक्त जगह मिलती है वहीं नदी, झील अथवा समुद्री किनारे पर इनका जमाव होता है। धीरे-धीरे वर्षों में जाकर ये रेत एक बड़ा आकार

ग्रहण कर लेती है। ताप और दाब के बढ़ने से इस तलछट के छिद्र दब जाते हैं और इसके भीतर से पानी बाहर निकल आता है और इसकी जगह सिलिका, कार्बोनेट, लौह ऑक्साइड घोल रूप में इन छिद्रों में भर जाते हैं और इस तरह ये ढीली रेतीली तलछट अवसादी चट्टान के रूप में ढल जाती है। सामान्यतया यह पूरी प्रक्रिया चार चरण में होती है—मौसम, कणों का बहाव, जमाव और पुनर्स्थापना और इसमें बहुत लंबा समय लगता है।

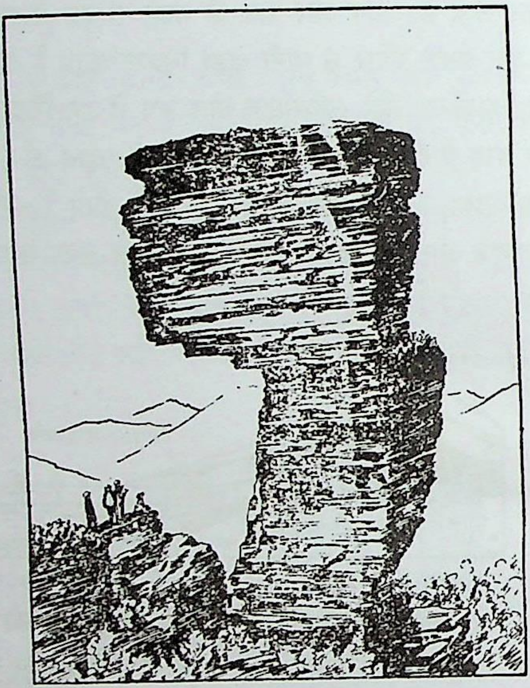


चित्र-34 : अवसादी चट्टानों की निर्माण प्रक्रिया

सभी अवसादी चट्टानें गलती से जलीय चट्टानों के रूप में जानी जाती हैं जबकि इनमें बहुत सी चट्टानें जल के द्वारा ही बनती हैं। जल द्वारा बहाकर लाया गया अवसाद परत-परत करके जमता चला जाता है इस प्रकार अवसादी चट्टान बनती है लेकिन बहुत सी वायु के द्वारा, झरनों अथवा ज्वालामुखीय परिवर्तनों से बनती हैं। उदाहरण के लिए उत्तरी चीन और इसके समीपस्थ क्षेत्रों में अधिकांश में वायु के द्वारा निर्मित चट्टानें पाई जाती हैं जो काफी दूर-दूर तक फैली हैं।

इन अवसादी चट्टानों का परिवार बहुत फैला होता है और इसमें सामान्य रूप से मडस्टोन, शाले, सैंडस्टोन, ब्रेक्सिया, चूना पत्थर, डोलोमाइट आदि चट्टानें इसी परिवार के सदस्य के रूप में जानी जाती हैं। अवसादी चट्टानों का प्रमुख उल्लेखनीय गुण इसकी सतह रचना है और यह पर्त पर पर्त पड़ने से बनती है। इसे संस्तरीकरण कहते हैं। संस्तर सतहों पर हम पानी की लहर के चिह्न अथवा प्राचीन पशुओं के पदचिह्न साफ

देख सकते हैं।



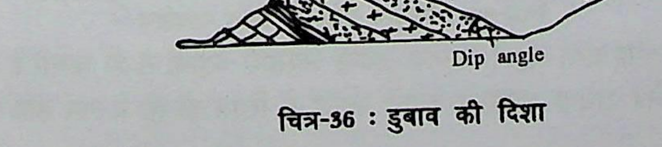
चित्र-35 : फफूंद चट्टान

इस संस्तर सतह पर वर्षा की बूंदों और लवण के आभासी केलासों के कृत्रिम जमाव के परिणामस्वरूप दरारें पड़ जाती हैं।

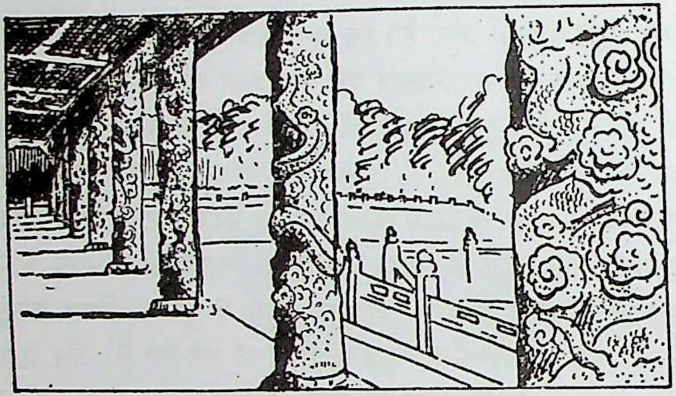
समुद्रों अथवा बड़ी-बड़ी झीलों के पास चट्टानों के जमाव में क्षैतिज परत पाई जाती है जबकि छोटी झीलों अथवा पर्वतीय तलहटियों में ये सामान्यतया झुकाव लिए होती हैं। प्रारम्भिक क्षैतिज संस्तर कुछ झुके हुए होते हैं और भू-पटलीय गतिविधियों से प्रभावित होते हैं। किसी संस्तर के बनने के कारणों को जानने में भूविज्ञानियों ने इसका गहराई से अध्ययंन किया है। एक विशेष संस्तर की सतह को क्षैतिज दिशा में आघात करके अथवा इस सतह पर गहराई से क्षैतिजीय दिशा में आगे बढ़ने पर नब्बे अंश की दिशा में गहरे आघात किये जाने से मापा जा सकता है। आघात, डुबाव और डुबाव की दिशा—ये तीनों ही एक निश्चित स्थान पर किसी संस्तर के आयामीय स्थिति निर्धारण को स्पष्ट करते हैं।

बहुतायत में फैली रेतीली चट्टानों में एक चूना पत्थर है जो अधिकांशतः पुराने समुद्रों में पाया जाता है। इस चूना पत्थर में मुख्य खनिज पदार्थ सफेद कैलसाइट होता है। सामान्यतया यह चूना पत्थर सलेटी, सफेद अथवा सलेटी काले रंग का होता है जो अशुद्धियों के कारण नीला पत्थर के नाम से जाना जाता है। इस चूना पत्थर की रासायनिक संरचना कार्बोनेट की होती है जो तनु नमक के अम्ल से क्रिया करके तेजी से बुदबुदाहट के साथ कार्बन डाइ आक्साइड निकालता है। यह चूना पत्थर सड़कें और भवन निर्माण में बहुतायत से प्रयोग होता है। शैनडांग प्रदेश में पुफ में स्थित कन्फूशियस मंदिर के बड़े-बड़े स्तम्भ इस चूना पत्थर से ही बने हुए हैं। और ये बड़े-बड़े स्तम्भ पश्चिमी शैन्डांग प्रदेश के पर्वत से निकाले गए चूना पत्थर के हैं। चूना पत्थर का मुख्य उपयोग चूना और सीमेंट बनाने में होता है। इसका प्रयोग सूत उद्योग और इस्पात प्रगलन में भी होता है।

इन अवसादी चट्टानों के संस्तरों के झराव का मुख्य कारण भूपटल की गतिविधियां हैं जो मुख्यतया टूटने और मुड़ने से पैदा होती हैं। टूटना और ऊपरी सतह का झुकाव ये दो प्रमुख प्रवृत्तियां ही मैग्मा को अपने आसपास की चट्टानों में प्रवेश करने के लिए जगह देती हैं। और इस प्रकार इनका जमाव होता है। चट्टानों के टूटने और मुड़ने से आई अधिकांश दरारों में जगह बन जाती है और उसमें जमीनी पानी जमा हो ज़ाता है। इन टूटनों और झुकावों का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि किसी संस्तर पर कितना दबाव पड़ सकता है और यह कितना मजबूत है। जिससे हम भूसतही गतिविधियों का अध्ययन कर सकते हैं। और इस प्रकार के अध्ययन को ही रचनात्मक भूगर्भशास्त्र के अन्तर्गत माना जाता है।



चित्र-36 : डुबाव की दिशा



चित्र-37 : चूना पत्थर के स्तम्भ

(ग) रूपान्तरित चट्टानें

भूपटल का लगभग 27% भाग रूपान्तरित चट्टानों का है। पूर्व युग की अधिकांश चट्टानें रूपान्तरित चट्टानें ही थीं इनमें से अधिकतर छोटी आयु में ही अनेक कारणों से रूपान्तरित हो गयीं।



चित्र-38 : जियांग प्रांत में प्राप्त अवशेष

ये रूपान्तरित चट्टानें आग्नेय अथवा अवसादी चट्टानों से ही बनती हैं। जब आग्नेय अथवा अवसादी चट्टानें गहराई में स्थित हों तो ये गर्म होकर

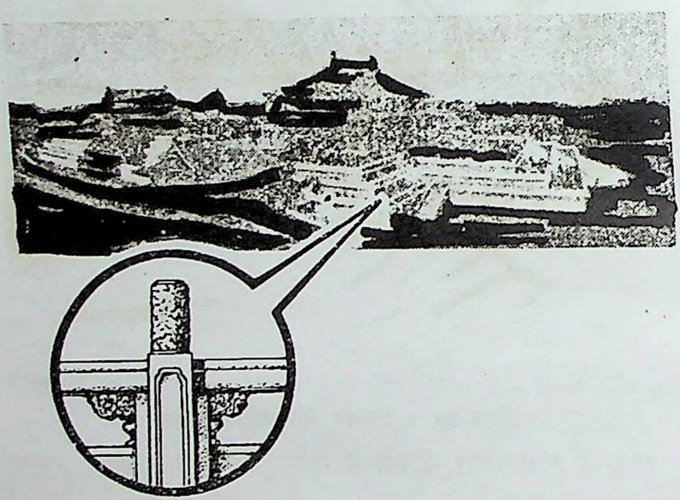
उबलते मैग्मा और खनिज पदार्थों के कारण परिवर्तन की अनेक प्रक्रियाओं से गुजरते हुए उच्च ताप तथा उच्च दाब के वातावरणीय लक्षणों के प्रभाव में अपने भीतर अनेक परिवर्तन कर लेती हैं। इन्हीं परिवर्तनों के फलस्वरूप रूपान्तरित चट्टानें बनती हैं।



चित्र-39 : तिब्बत का खंडित भाग

सामान्य रूपान्तरित चट्टानों में सलेट, शिष्ट, फाइलाइट, ग्नीस और मार्बल आदि आती है। सलेट सघन, बारीक कणों वाली अच्छी प्रकार की पर्तदार चट्टान होती हैं। जो सामान्यतया पतली एवं चिकनी सतह वाले ब्लैक बोर्ड, छत की पट्टियों और ऐसे ही दूसरे कई उपयोगों में आती हैं। ग्नीस बहुत ही उच्च रूपान्तरित चट्टान है जिसमें बहुत शिथिल पर्ते होती हैं लेकिन देखने में यह बंधी पट्टीदार झलक लिए होती है और अक्सर ग्रेनाइट के समान लगती है हालांकि इसका उपयोग भी मकान बनाने में होता है पर इसे सरलता से काटा जा सकता है। मार्बल, चूना पत्थर या ऐसी ही चट्टानों के रूपान्तरण से बनता है। ये पारदर्शी केलासों के कारण चूना पत्थर से भिन्न होता है। ब्लैक ग्रेफाइट, हरे टैक्सोएट और ऐसे ही दूसरे खनिजों की उपस्थिति के कारण कई बार मार्बल बड़े सुन्दर रंग की झलक वाला भी देखा जाता है। बीजिंग में एक विशेष प्रकार का मार्बल मिलता है यह 'हेन वाऊ' कहलाता है। यह देखने में सफेद चमकदार और बारीक दानेदार

होता है। यह बड़े-बड़े स्तम्भों और जंगलों के निर्माण में काम आता है। और इस हेन वाऊ के बने जंगले और स्तम्भ महलों, अजायबघरों, पुलों, वाइ हाई पार्क, जननायकों के कीर्ति स्तम्भों और स्मृति हॉल में देखे जा सकते हैं। पैलेस म्यूजियम में मंदिर की सीढ़ियां इस हेन वाऊ मार्बल की ही बनी हैं।



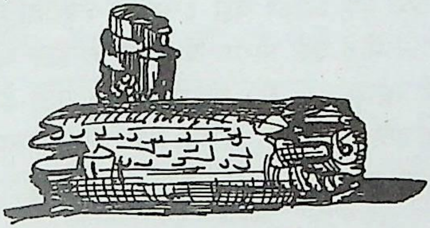
चित्र-40 : महल के अजायबघर में मंदिर का अग्रभाग

3. पृथ्वी के इतिहास का विशेष लेखा

जन्तु और वनस्पतियों द्वारा अतीत में इन अवसादी चट्टानों पर छोड़े गए अवशेष जीवाश्म या फॉसिल कहलाते हैं। जैसे डायनोसॉर का अतिविशाल अस्थिपिंजर प्राकृतिक इतिहास म्यूजियम में संरक्षित है। कीट समूह में कहरुवा (सिलिकामय काष्ठ) भूगर्भीय म्यूजियम में संरक्षित है। (चित्र-41)

जन्तु या वनस्पति जीवाश्म (फॉसिल) का रूप कैसे ग्रहण कर लेते हैं ? क्या मृत्यु के बाद शरीर के सभी अवयव जीवाश्म बन जाते हैं। नहीं, क्योंकि जन्तु या वनस्पति का जीवाश्मीकरण कई स्थितियों पर निर्भर करता

है। सामान्यतया इनमें दो स्थितियां अनुपेक्षणीय हैं—उन जीवधारियों का एक अस्थिपिंज़र हो, बाहरी आकार हो यानि शैल हों। ताकि वे शीघ्र ही नष्ट न हो सकें।



चित्र-41 : सिलिकायुक्त काष्ठ

दूसरे वे शीघ्र ही हवा से अलग हो सकें ताकि उनका आक्सीकरण या विघटन न हो सके। क्योंकि उनके शरीर का कठोर से कठोर भाग भी सूर्य का प्रकाश, हवा, पानी, वर्षा आदि से नष्ट हुए बिना नहीं रह पाता। अतः केवल वे जन्तु या वनस्पति जो नदी के मुहाने पर हों, झील के किनारे हों या उथले समुद्र तल पर हों जहां शीघ्र ही उनके ऊपर सतह का आवरण हो सके वे सरलता से फॉसिल बन सकते हैं। कई बार कोई जीवधारी किसी विशेष परिस्थिति में पूरी तरह संरक्षित हो जाता है जैसे कोई कीट तरल रेजिन से चिपककर रह गया, बाद में यही 'कहरुवा' में ढल गया। कहीं-कहीं पृथ्वी पर ताड़ की झाड़ी या फूलों में लगभग 4 करोड़ वर्ष पूर्व कीट मंडराते थे। उस समय किसी ताड़ के तने से टपकते शहद या गोंद में कोई कीट चिपक गया और उसके बाद रेत की सतह में दब गया और भूगर्भीय समय की पर्त में दबे दबे होने वाले परिवर्तनों में वह रेजिन की बूंद 'कहरुवा' में ढल गई, उसमें वह छोटा-सा कीट जीवाश्मीकृत हो गया।

फॉसिल युक्त संसार हमारे लिए एक पुस्तक के समान है जो जीवधारियों के विकासात्मक इतिहास और पृथ्वी के इतिहास की कहानी कहते हैं। इनसे हमें वे वैज्ञानिक आंकड़े प्राप्त होते हैं जिनके आधार पर हम नृतत्व विज्ञान, नृतत्व भूगोल एवं नृतत्व जलवायु सम्बन्धी अध्ययन करने में सक्षम होते हैं।

बहरहाल, कुछ स्थितियों में हमें जीवाश्म की जगह मिथ्या जीवाश्म मिल

सकते हैं। संस्तरों में संधि स्थलों पर हमें अक्सर पतली झिल्लियां मिलती हैं। जो सरुसाख के समान दिखती हैं और हम उन्हें जीवाश्म समझ लेते हैं। वास्तव में वह मैंग्नीज और लौह तत्व होते हैं जो भूमि तल में स्थित जल के कारण बहते हुए आकर वहां दरारों में जमा हो जाते हैं। बड़लिंज में विशाल दीवार के नीचे ऐसे मिथ्या जीवाश्मों के होने की बात कहते हैं। ऐसे ही पर्वतों की तलहटी में कुछ मंदिरों में कुछ ऐसी ही तने जैसी चीजें मिलती हैं। लोग इन्हें अश्मीकृत काष्ठ कहते हैं। वास्तव में इनमें कुछ अश्मीकृत काष्ठ हो सकते हैं लेकिन उनमें कुछ अश्मीकृत नहीं होते।



चित्र-42 : कहरुवा (एम्बर) में कीट जीवाश्म

यह स्पष्ट है कि सामान्यतया जीवधारी साधारण स्थिति से जटिल अवस्था में परिवर्तित हो जाते हैं। इस तरह वृद्धतम संस्तरों में बहुत कम लेकिन बहुत साधारण फॉसिल्स के संस्तर होते हैं। वृद्धतम संस्तरों में अभी तक जीवाश्मों के कोई संकेत नहीं मिले हैं। जबकि दूसरी ओर जो संस्तर नए होते हैं उनमें पाये जाने वाले जीवाश्म बहुत अधिक संख्या में होते हैं और ये जीवाश्म बहुत जटिल होते हैं। इसलिए फॉसिल्स संस्तरों की अपेक्षित आयु और जीवधारियों के विकासात्मक इतिहास का अध्ययन करने में सहायक होते हैं। अवसादी चट्टानों से प्राप्त फॉसिल्स के 200 वर्षों के अध्ययन से हमें जीवन के विकास के प्रमाण मिले हैं। विकास की कई अवस्थाओं का पता चला है। भूगर्भीय समय चक्र के रूप में विभाजित मुख्य पांच अवस्थाएं हैं इन्हें युग कहा गया। ये निम्न हैं–

आर्केजोइक युग (आद्य कल्प)
प्रोटोजोइक युग (प्राजीव कल्प)
पेलियोजोइक युग (पुराजीव कल्प)
मीसोजोइक युग (मध्यजीव कल्प)
सीनोजोइक युग (नवजीव कल्प)

आगे इन युगों का उपविभाजन समय की संक्षिप्त इकाई के रूप में किया गया। इसे काल कहा गया। यहां काल एवं कल्प को नीचे से ऊपर की ओर वृद्ध संस्तरों से नए संस्तरों के क्रम में सूचीबद्ध किया गया है जो चट्टान की आयु बताता है। यह सूची भूगर्भीय समय सूचक है।

कल्प	काल	वर्ष जिससे पूर्व उपस्थित थे (मिलियन वर्ष)	जीवन इतिहास में कुछ महत्व पूर्ण क्षण
नवजीव कल्प (सीनोजोइक)	चतुर्थ कल्प	2-3	मनुष्य
	नव्यजीन	25	
	पुराजीन	70	स्तनधारियों, पक्षियों एवं एंजियो-स्पर्म का विस्तार
	क्रिटेससयुग	135	प्रथम पुष्प वाले पौधे; अंतिम डायनोसोर
मध्यजीव कल्प (मीजोजोइक)	जुरासिक	180	प्रथम पक्षी, डायनोसोर और जिम्नोस्पर्म की बहुलता
	ट्राइएसिक	225	प्रथम स्तनधारी, साइकेड्स एवं पाइनरस की बहुलता

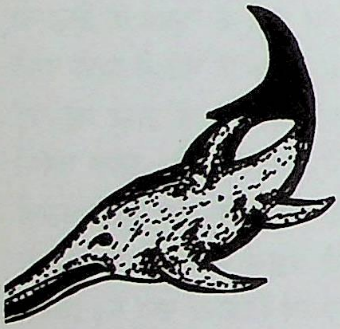
पुराकल्प (पेलियोजोइक)	पर्मियन काल	280	प्रारंभिक सरीसृपों का बहुलता से विस्तार
	कार्वोनीफेरस	350	प्रथम सरीसृप, एम्फीबियन की बहुतायत
	डेवन काल	400	प्रथम एम्फिबियन, मत्स्य की बहुतायत
	सिल्युरियन	440	प्रथम भूमि वनस्पतियां
	ओडोविसियन	500	प्रथम मत्स्य, नोटिलस की बहुलता
	कैम्ब्रियन	600	ट्राइलोबाइट्स का आधिपत्य
प्राजीव कल्प (प्रोट्रोजोइक)	प्राजीव काल	2500	प्रारंभिक शैवाल की बहुतायत प्रथम कैरियोट
आद्य कल्प (आर्कोजोइक)	आद्य युग	4600	प्रथम प्रोकैरियोट्स

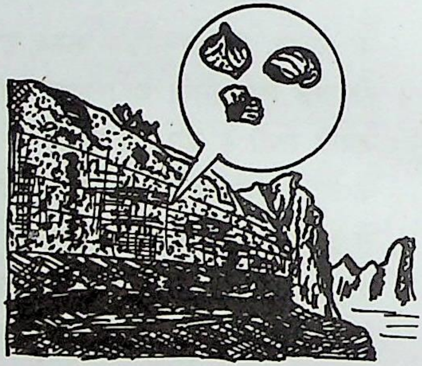
इस सारणी से हमें संबंधित संस्तरों के द्वारा निश्चित कल्प में उनके प्रतिनिधि जन्तुओं एवं वनस्पतियों का परिचय मिलता है। और यदि ये प्रतिनिधि जन्तु और वनस्पति जो निदेशक जीवाश्म कहलाते हैं, एक निश्चित पर्त में पाए जाते हैं तो इनकी सहायता से उस संस्तर की अपेक्षित आयु ज्ञात की जा सकती है।

भूविज्ञानियों ने पुरानी पर्तों के ऊपर नई पर्तों के जमाव के सिद्धान्त के आधार पर भिन्न-भिन्न समय में पर्तों के जमाव के बारे में बहुत पहले ही पता लगा लिया था। उनके आधार पर एक पर्त के ऊपर नई पर्त जमती रहती है और इस प्रक्रिया में भूगर्भीय घटनाक्रम और उसके संबंधों के आधार पर यह निर्णय लिया गया कि आग्नेय चट्टानें अन्य दूसरी चट्टानों से अधिक नई होती हैं और इस तरह अवसादी चट्टानों में समाए हुए जीवाश्म की सहायता से उनकी भूगर्भीय आयु का निष्कर्ष निकाला गया है। 1940 में विज्ञान और टेक्नोलाजी के विकास से सम्पूर्ण आयु का परिमापन संभव हो पाया। किसी भी चट्टान की सम्पूर्ण आयु उस चट्टान में उपस्थित रेडियोधर्मी समस्थानिकों (आइसोटोप) की परीक्षा से ज्ञात की गई और इस तरह यह पाया कि सम्पूर्ण आयु आइसोटोपिक आयु ही है। आज पृथ्वी की भूगर्भीय आयु लगभग 4.6 करोड़ वर्ष मानी जाती है और पृथ्वी पर जीवन के संकेत 3.2 करोड़ वर्ष पुराने ज्ञात होते हैं। इसमें पुराने सूक्ष्म जीवाश्म आते हैं जिन्हें इलेक्ट्रोनिक सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जा सकता है। ये दक्षिण अफ्रीका में पाए गए। यदि स्पष्ट कहा जाए तो पृथ्वी पर जीवधारियों का सहज विकास साठ लाख वर्ष पूर्व ही तेजी से हो पाया और मानव जाति के पूर्वजों का पृथ्वी पर पाए जाने का संकेत बीस-तीस लाख वर्ष पुराना है। मानव के इतिहास के रिकार्ड की तुलना में यह समय बहुत लंबा है। लेकिन पृथ्वी के इतिहास की तुलना में यह एक छोटे से प्रकाश पुंज की तरह है।

इन जीवाश्मों से यह स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि प्राचीन काल में जन्तु या वनस्पति किस पर्यावरण में रहते थे। अस्ल में जन्तु या वनस्पतियों को

जीने के लिए एक विशिष्ट वातावरण की आवश्यकता होती है। भौगोलिक स्थितियों में परिवर्तन के कारण ही जन्तु एवं वनस्पतियों के जीवन और स्थानांतरण में परिवर्तन होता रहता है। 1964 में एक खोजी टीम ने इक्थियोसोर के बड़े विराट जन्तु जीवाश्म खोज निकाले। यह इक्थियोसोर कभी पूर्व ट्राइएसिक काल में प्राचीन समुंद्र में पाये जाते थे।



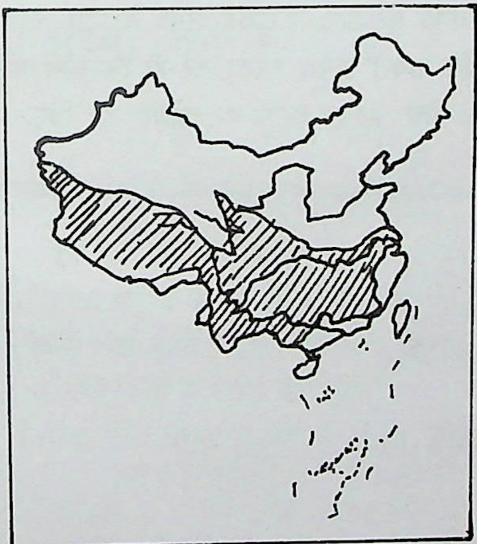


चित्र-43 : हिमालय में पाया गया जन्तु   चित्र-44 : जलीय अरीढ़धारी

जो पर्वत की 4300 मीटर ऊंचाई वाले भूसंस्तरों में पाए गए। इस खोज से यह प्रमाणित होता है कि जो क्षेत्र आज हिमाच्छादित दिखाई पड़ता है यह पूर्व पश्चिम में फैला एक विशाल समुद्र था। इसी खोज के दौरान वैज्ञानिकों ने पाया कि 5900 मीटर ऊंचाई पर जीवाश्मों का एक पर्वत है। जिस समय वनस्पतियां भूगर्भ में समायी होंगी उस समय पर्वत की ऊंचाई 2700 मीटर रही होगी। तब से अब तक यह पर्वत 30-40 लाख वर्ष में 3200 मीटर ऊंचा उठ गया। ऊंचे पर्वतों पर चट्टानें पत्थरों के रूप में भी दिखाई देती हैं जो भूमि के परिवर्तन के लक्षण है, इससे यह स्पष्ट है कि जीवाश्म भूमि और समुद्र के फैलाव के साक्ष्य हैं।

यह भी एक तथ्य है कि जीवाश्मों से हमें प्राचीन जलवायु के बारे में भी ज्ञान होता है। उदाहरणार्थ—एक जलीय पशु जो गर्म उथले समुद्र में रहता है। (लगभग 18° सें. से 20 सें. ताप एवं 100 मीटर से कम

गहरे तल पर) अगर चूना पत्थर के संस्तरों में कोरल जीवाश्म प्राप्त होते हैं तो यह स्पष्ट है कि पूर्व किसी भूगर्भीय काल में वहां गर्म और उथले जल का एक समुद्र रहा होगा। आस्ट्रिच के बीज कोश सैकड़ों हजारों साल पहले पूरे उत्तर चीन में पाए जाते थे जो बताते हैं कि उत्तर चीन की जलवायु कभी गर्म एवं शुष्क थी। हमें हेन प्रांत में हाथी, राइनोसीरोस, तापिर, डेविड, हिरण, भैंस आदि के अवशेष मिले हैं इसका अभिप्राय है कि इस प्रांत में लगभग 3500 वर्ष पूर्व आज की अपेक्षा जलवायु काफी गर्म एवं आर्द्र थी।



चित्र-45 : पुराकाल में भूमि एवं जल सतह का विभाजन

इस उदाहरणों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जीवाश्म न केवल पुराकालीन वातावरण और जलवायु के बारे में ही संकेत देते हैं बल्कि समुद्र और भूसतह के परिवर्तनशील स्वरूप से भी परिचित कराते हैं। इस आलोक में हम विभिन्न पुरा भौगोलिक नक्शे बना सकते हैं।

जीवाश्मों के द्वारा अयस्कों के बारे में भी संकेत मिलते हैं उदाहरणार्थ—जिआंग प्रांत में प्राप्त कोयला खान को समाप्तप्रायः मान लिया



Thin section



Test of fusulinid

चित्र-46 : एककोशीय जीव

गया क्योंकि निम्नतम कोल संस्तर खनन कर लिया गया मान लिया गया। बहरहाल प्रोटोजोआ जन्तुओं के जीवाश्मों के पाए जाने को धन्यवाद करना चाहिए । जो कभी पुराकाल में उथले समुद्र में पाए जाते थे। इससे यह निश्चय हुआ कि सबसे ऊपरी संस्तर को ही निम्नतम संस्तर मान लिया गया। इसके नीचे खनन करने पर कोयले का विपुल भण्डार मिला।

5

पृथ्वी का खजाना : खनिज संसाधन

पृथ्वी में खनिज संसाधनों का भण्डार भरा पड़ा है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि ये खनिज मनुष्य के दैनंदिन जीवन और राष्ट्रीय अर्थविकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि यदि उद्योगों के लिए लोहा व स्टील का स्रोत न हो अथवा हमारे घरों को गर्म रखने के लिए तेल अथवा कोयले न हों तो हमारा जीवन कैसा होगा ?

1. खनिज संसाधनों की प्रचुरता

खनिज संसाधन मूल्यवान खनिजों अथवा चट्टानों के रूप में भूगर्भ में असीमित सामग्री लिए होते हैं। प्राकृतिक रूप से प्राप्त होने वाले पदार्थ भूमि से खनन के द्वारा निकाले जाते हैं। इनसे खनिज अथवा खनिजों को अलग किया जाता है। जिस पदार्थ में से मूल्यवान खनिज प्राप्त किए जाते हैं वह पदार्थ अयस्क कहलाता है। पृथ्वी में खनिज संसाधन बहुत हैं और विविधता लिए हुए हैं। अपने गुणों और औद्योगिक उपयोगों के आधार पर इन्हें निम्न रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

(क) धात्विक लौह अयस्क

लौह धातु—लोहा, मैंगनीज, क्रोमियम, वेनेडियम, टाइटेनियम (लौह और इस्पात उद्योगशाला के लिए मुख्य कच्चा माल।)

अलौह धातु—तांबा, सीसा, जस्ता, टंगस्टन, टिन, मालिब्डनम, एंटीमनी, पारा, एल्यूमीनियम, बिस्मथ, मैग्नीशियम, कोबाल्ट, निकिल आदि।

विरल धातु—लीथियम, वेरीलियम, टैंटलम, नायोबियम, रूबीडियम, सीजियम, स्ट्रांशियम आदि।

सिक्का धातु—स्वर्ण, चांदी, प्लेटिनम आदि।

विरल मृदा धातु—नीयोड्रिमियम, समारियम, इटरबियम आदि।

रेडियोधर्मी धातु—यूरेनियम, रेडियम, थोरियम।

(ख) अधात्विक लौह अयस्क

धातुकर्मिक उद्योगशालाओं के लिए सहायक कच्चा माल—मैग्नेसाइट, परावती मिट्टी, सिली कारनाइट या क्वार्टजाइट, सिलियो फ्लूओराइट, चूना पत्थर तथा डोलोमाइट आदि।

रासायनिक खाद एवं कीटाणुनाशक निर्माण के लिए कच्चा माल—आर्सेनिक, फास्फोरस, पोटेशियम, नाइट्रोजन।

रासायनिक उद्योग के लिए कच्चा माल—गन्धक, फास्फोरस, सिल्वाइट, लवण, प्राकृतिक क्षार, एलम पत्थर, मिराबिलाइट, बैराइट।

ईंधन उद्योग के लिए—कोल, सैल, चट्टानें, पैट्रोलियम, प्राकृतिक गैसें।

विद्युत उपकरणों के लिए—माइका, एन्डलूसाइट, पीजोविद्युत क्वार्ट्ज, ग्रेफाइट, एसबैसटोस आदि।

भवन निर्माण सामग्री के लिए—फेल्डस्पार, क्वार्ट्ज, क्ले, केओलिन, एसबैसटोस, जिप्सम, टैल्कम, चूना पत्थर, क्वार्ट्ज सैन्ड, डायाबेस, बैसाल्ट, प्यूमिस, रेत पत्थर, सिफाइट आदि।

कला एवं शिल्प के लिए—एगेट, रवा और दूसरे जवाहरात आदि।

हमारे देश में खनिज पदार्थों का विपुल भण्डार है। भारत में खनिजों को वितरण असमान है अर्थात इन खनिजों का उत्खनन विभिन्न राज्यों

से विभिन्न मात्रा में होता है। कोई क्षेत्र विशेष किसी खनिज विशेष के लिए प्रसिद्ध है।

देश में कुछ खनिज पदार्थ जैसे अभ्रक, बैराइटस, बाक्साइट, चीनी मिट्टी, डोलोमाइट, फेल्डस्पार, लोहा, मैंग्नीज इत्यादि की बहुतायत है अतः निर्यात किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य धात्विक और अधात्विक खनिज तथा ईंधन खनिज भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। भारत में 3500 करोड़ रुपए से अधिक के खनिज पदार्थों का उत्पादन प्रतिवर्ष होता है। भारत के बिहार, उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश खनिज उत्पादन में अग्रणी स्थान रखते हैं।

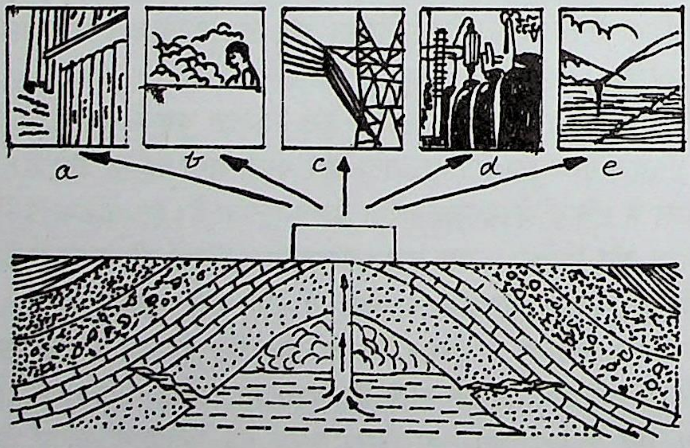
खनिज संसाधनों ने भारत को इतिहास के स्वर्णाक्षरों में दर्ज कर दिया। अनुप्रयोगों में विस्तार करते हुए भोजन संरक्षण और औषधि विज्ञान में भी इसका प्रयोग किया गया। आज हम परमाणु युग में जी रहे हैं। जिसमें मिश्रधातु, यौगिक पदार्थ, यांत्रिक प्लास्टिक का सामान्य उपयोग हो रहा है। फलस्वरूप खनिज संसाधनों की बहुत बड़ी मात्रा की आवश्यकता है इसलिए खनिज संसाधनों का विस्तार और उपयोग आज काफी महत्वपूर्ण हो गया है।

सामान्यतया लाभदायक खनिज कुछ निश्चित चट्टानों से निकाले जाते हैं। शैलमूल में जटिल धात्विक तत्व और दूसरे अन्य खनिज होते हैं। यह भू-पटल में प्रविष्ट होकर ज्वलनशील चट्टान बनाता है। इस प्रक्रिया में निम्न गलनांक और विशिष्ट ऊष्मा वाले धात्विक तत्व दीवारों की चट्टान से क्रिया करते हुए जटिल भूगर्भीय अवस्था में लौह-धातु अयस्क बनाते हैं। सामान्यतया प्लेटिनम, क्रोमियम, निकल और हीरा के सामान भारी धातुएं अपने आवर्ती क्रम में पाई जाती हैं। बहुत सी अलौह धातुएं ताम्र, लैड, जस्ता और सिक्का धातु तथा विरल धातुएं एवं रेडियोधर्मी धातुएं (कण रूप में) तथा इनके संपर्क क्षेत्र में कोयला, तेल, बाक्साइट, लोहा, मैंगनीज, फास्फोरस, शैलसाल्ट, जिप्सम आदि अवसादी चट्टान के रूप में पाई जाती है। यह स्पष्ट है कि अयस्क का बनना और जमा होना चट्टानों के साथ जुड़ा है जो बाह्य और आंतरिक बल पर निर्भर करता है। चट्टानों की

पहचान और उनकी भूगर्भशास्त्रीय संरचना का अध्ययन इनके उपयोग और विस्तार के लिए अत्यावश्यक है।

2. वनस्पति एवं कोयला

ईंधन के रूप में कोयले से हम सभी परिचित हैं। यह अतीत की वनस्पतियों से बनता है। (चित्र-47) जीवाश्म वनस्पतियों में जड़ें, शाखाएं, तने, पत्तियां और फल सभी सम्मिलित होते हैं और ये अक्सर कोयले और उसकी समीपस्थ चट्टानों में पाए जाते हैं। एक सूक्ष्मदर्शी की सहायता से कोयले की चट्टान की काट का अध्ययन करने से मूल काष्ठ की संरचना और ऊतकों की उपस्थिति का प्रणाम मिला। कोयले और वनस्पतियों की रासायनिक संघटना समान पाई गयी। दोनों ही कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, गंधक और अन्य दूसरे तत्वों से मिलकर बने हैं। इससे यही निश्चित होता है कि कोयला अपनी पूर्व अवस्था में वनस्पति ही था।



चित्र-47 : कोयला बने पूर्ववृक्ष की जड़

कोई वनस्पति कोयले में परिवर्तित कैसे होती है ? कुछ निश्चित भूगर्भीय कालखण्ड में गर्म एवं शीत जलवायु की अनुकूलता में झील, दलदल तथा तटीय क्षेत्रों में भूसतह पर पौधे उग आए। जब ये पौधे सूखकर झर

गए तो ये झील में या उथले समुद्र में, जहां भी उन्हें जगह मिली, रेत या गार में मिल गए। आक्सीजन की कमी में ये वनस्पतियां जीवाणुओं द्वारा अपघटित होकर पीट या जैली के समान शक्ल में ढल गईं जिसमें वनस्पतियों का अस्तित्व बना रहा।

पीट एवं जैली समान मिश्रण नीचे बैठ गया, उसके भीतर से अधिकांश पानी की मात्रा और वाष्पशील नाइट्रोजन, आक्सीजन तथा गंधक आदि पदार्थों की मात्रा निकल गयी, उनके आयतन में कमी आने के साथ-साथ कठोरता में वृद्धि होती गयी। वे भूरे कोयले में रूपान्तरित हो गए । जैसे-जैसे भूरे कोयले की दफ्न गहनता बढ़कर सतह में निमग्न होती गयी और ऊपरी संस्तर मोटा होता गया तापक्रम और दबाव भी निरन्तर बढ़ने लगे। ज्यों ही पानी और वाष्पशील पदार्थ उसमें से निकलने लगे और कार्बन पदार्थ तथा कठोरता काफी अधिक मात्रा में बढ़ गई तो यही भूरा कोयला पहले काजल में और फिर सख्त कोयले में रूपान्तरित हो गया।

दाब में बढ़ोतरी के साथ-साथ कार्बनीकरण की प्रक्रिया जारी रही। जैसे-जैसे कार्बन पदार्थ बढ़े तथा वाष्पशील पदार्थ कमतर हुए, कोयले का रंग अपेक्षाकृत और अधिक काला हो गया और उसका ऊष्मा मूल्य ऊंचा होता गया। कार्बनीकरण की प्रक्रिया में कोयला भूरे कोयले से कठोर कोयले में परिवर्तित होते हुए अपेक्षाकृत और कठोर तथा पिण्डाकार होता गया। अतः कोयला एवं उसके अपररूप गुणों में काफी भिन्न होते हैं और निश्चय ही बहुत उपयोगी हैं।

भूरा कोयला : लिग्नाइट—यह निम्नस्तर का कोयला है। यह भूरा या भूरापन लिए काला, चमकविहीन, हल्का, गठन में शिथिल होता है और सामान्यतया मूल काष्ठ की संरचना का प्रतिपादन करता है। यह ऊष्मा में निम्न मूल्यवत्ता वाला होता है तथा नमी के आधिक्य के कारण जलने पर घना धुआं देता है। लिग्नाइट रासायनिक उद्योगशालाओं के लिए या तेल शोधन का प्रमुख कच्चा पदार्थ है और प्रमुख ईंधन के रूप में प्रयुक्त होता है। इसमें कालिख का अभाव होता है।

काजल—यह काला, सघन, कम चमकीला, जलने पर धुआं देने वाला,

चिकनी सतह वाला और उच्च ऊष्मा मूल्य वाला होता है। विद्युत उत्पादन में और भाप वाष्पन एवं खाना बनाने में यह एक अच्छे ईंधन के रूप में प्रयुक्त होता है। उद्योगों के लिए यह प्रमुख ईंधन के रूप में काम आता है।

हार्डकोल—यह काला कलूटा, कठोर किन्तु भुरभुरा, चमकदार और सघन होता है। यह बहुत कम वाष्पशीलता युक्त होता है। उद्योगशालाओं में या कहें खाना बनाने में बहुत कम प्रयुक्त होता है हालांकि खाना बनाने की दृष्टि से यह उत्तम ईंधन है। अपने उच्च ताप मूल्य के कारण यह गैस उत्पादन के लिए कच्चे पदार्थ के रूप में प्रयुक्त होता है। यह कम धुआं देता है और काफी देर तक जलता है।

यह तो विदित ही है कि प्राचीन काल में वनस्पतियों के झील या समुद्री जल में जमाव के कारण ही कोयले की उत्पत्ति हुई किन्तु यह भी ध्यान रहे कि कोयले की परतें तलछटी चट्टानों (बरुआ पत्थरों, शैल आदि) में अन्तःस्थापित हो जाती हैं। चट्टानों के ऊपरी संस्तर या छतों पर शीघ्र ही कोल संस्तरों की तह बैठ जाने पर इन्हें शीर्षस्थ पट्टी कहा जाता है और इन कोल संस्तरों की परत को शापित पट्टी कहा जाता है। इस तरह विवर्तनिक गतिविधियों के बाद एक निर्धारित भूगर्भीय कालखण्ड में बनी कोल श्रेणी के संरक्षित भाग का सैकड़ों किलोमीटर तक का विस्तार कोल क्षेत्र कहलाता है। अधिकांश कोल क्षेत्र कार्बन युग के संस्तरों (35 करोड़ से 22 करोड़ वर्ष पूर्व तक) जुरासिक युग (18 करोड़ वर्ष से 13.5 करोड़ वर्ष पूर्व तक) और तृतीय महाकल्प (7 करोड़ वर्ष से 20 लाख वर्ष पूर्व तक) के संस्तरों में पाया गया। हमारे देश में कोयले का विपुल भण्डार है। बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश तथा पश्चिम बंगाल में कोयले का भरपूर उत्पादन होता है।

जीवधारी एवं तेल—पेट्रोलियम द्रव अवस्था में (फॉसिल) जीवाश्म ईंधन है जो अक्सर प्राकृतिक गैसों के साथ पाया जाता है।

मिट्टी के तेल का उपयोग हल्के तेल के लैम्पों तथा स्टोव में होता है, गैसोलिन (पेट्रोल) का प्रयोग कारों में हो रहा है और वायुयानों के चालन में, मशीनों में स्नेहन के लिए स्नेहक के रूप में, वैसलीन तथा पैराफिन (मोम)

मरीजों के काम आता है, तारकोल सड़क निर्माण में काम आता है। ये सभी चीजें पेट्रोलियम से ही प्राप्त होती हैं। कहा जा सकता है कि 5000 से भी अधिक पेट्रोलियम उत्पादों का आज उद्योग, कृषि और सेना में प्रचुरता से उपयोग हो रहा है।

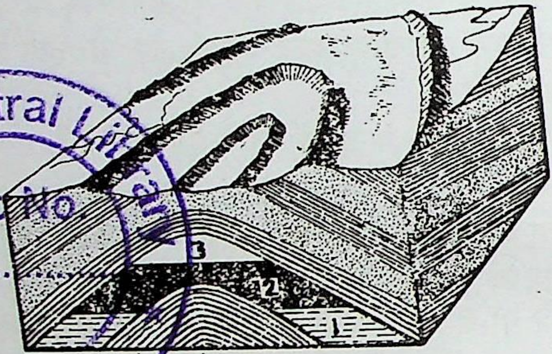
हम पूछ सकते हैं कि वास्तव में यह पेट्रोलियम क्या है ? और कहां से आता है ?

पेट्रोलियम प्राकृतिक रूप से पाया जानेवाला जटिल द्रव हाइड्रोकार्बन है जिसमें बहुत सी अशुद्धियां मिली होती हैं जिसके कारण इसका रंग भूरे-काले रंग से भूरे-पीले रंग तक विविधता लिए होता है। यह एक गाढ़ा तैलीय द्रव पदार्थ है, पानी से हल्का है किन्तु शीघ्र ज्वलनशील होता है।

पेट्रोलियम पुराने जीवों के सड़ने गलने एवं जमीन में गर्क हो जाने से बनता है। भूगर्भ कालखण्ड में बहुत बड़ी संख्या में जानवर एवं वनस्पतियां, विशेषकर अणुजीव खाड़ी के जल में निमग्न हो गए, समुद्र में धंस गए या मृत्यु को प्राप्त हुए। और इस तरह परस्पर चूना मिट्टी, गाद और रेत में मिलकर जैवी गार एवं दलदल में ढल गए। मिट्टी और रेत का जमाव लगातार होता रहा और इस तरह दलदल पूरी तरह ढक गया। आक्सीजन के अभाव में ताप एवं दाब के मिश्रित प्रभाव से ये मृत जीवधारी जटिल रासायनिक क्रिया द्वारा तेल में रूपान्तरित हो गए। प्रारम्भ में यह तेल अपने मूल स्थान पर बूंद की तरह बिखरा जो बाद में दाब के द्वारा पारदर्शी चट्टानों में भर गया। जैसे बरुआ पत्थर, सेफाइट या चूना पत्थर ये सभी चट्टानें छिद्रमय थीं। अतः क्योंकि तेल पानी से हल्का होता है इसलिए इस प्रवृत्ति से यह जल से ऊपर आ गया किन्तु जहां इस तेल के भंडार की छत की ओर कठोर अपारदर्शी चट्टानें आड़े आ गईं वहां यह तेल वहीं सिमटकर रह गया और निचली सतह में ही बना रहा।

तेल को सुरक्षित रखने के लिए प्रतिरेखाएं काफी अनुकूल होती हैं और इसकी तरह की रचना जो तेल को सुरक्षित रख सके भण्डार कहलाती है और ऐसी सरोवरी मुहाने की या उथले समुद्री मुहाने की बरुआ चट्टानें और तेल भण्डार ही भूगर्भशास्त्रियों को तेल और प्राकृतिक गैस की खोज में

मार्गदर्शन का काम करते हैं। (चित्र-48)



1. जल 2. तेल 3. गैस

चित्र-48 : तेल स्रोत की संरचना

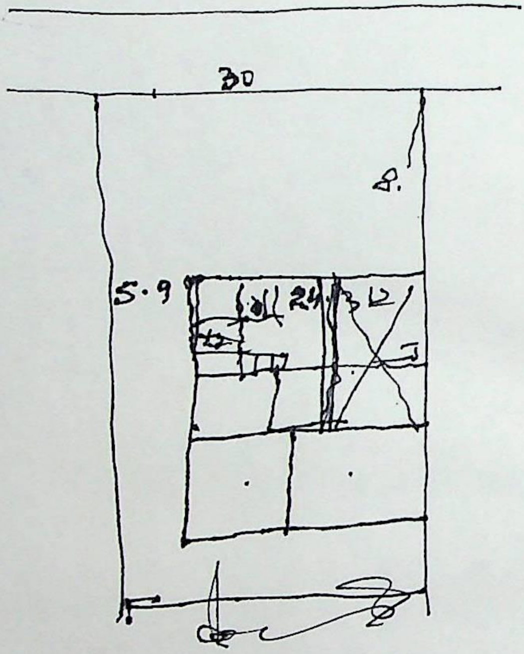
हमारे देश में खनिज तेल और प्राकृतिक गैस का उत्पादन बढ़ाने के लिए सरकार नए-नए संसाधनों को जुटाने का भरसक प्रयास करती रहती है। खनिज तेल तथा प्राकृतिक गैस प्राप्त होने वाले क्षेत्रों का पता लगाने के लिए आधुनिक विज्ञान और तकनीकी का सहारा लिया जा रहा है।

असम, त्रिपुरा, मणिपुर, पश्चिम बंगाल, गंगा की घाटी, कच्छ तथा समुद्रतटीय क्षेत्र अंडमान तथा लक्षद्वीप तथा उपतटीय क्षेत्रों में खनिज तेल के भण्डार हैं। 'मुंबई हाई' खनिज तेल के लिए बहुत प्रसिद्ध है। पृथ्वी से सीधे प्राप्त खनिज तेल का प्रयोग नहीं किया जाता है। प्रयोग में लाने से पूर्व उसे परिशोधित किया जाता है तत्पश्चात ही हमें पेट्रोल, डीजल तथा मिट्टी का तेल प्राप्त होता है। तेल शोधन की प्रक्रिया में तेल को उच्च ताप पर गर्म किया जाता है जिससे इसके विभिन्न संघटक भिन्न-भिन्न तापमान पर वाष्पित हो जाते हैं। इन सबको अलग प्रभाजक कालम में इकट्ठा कर लिया जाता है।

तेल शोधन की प्रक्रिया में कुछ उप-उत्पाद भी प्राप्त होते हैं जो विभिन्न रासायनिक उद्योगों में प्रयुक्त किए जाते हैं जिनसे आगे चलकर विस्फोटक तथा अन्य सामग्री के निर्माण में सहायता मिलती है।

हमारे देश के विभिन्न तेल शोधक कारखानों में कुछ बरौनी, कोयाली, चेन्नई, मथुरा, विशाखापट्टनम आदि में हैं।

□


30
5·9